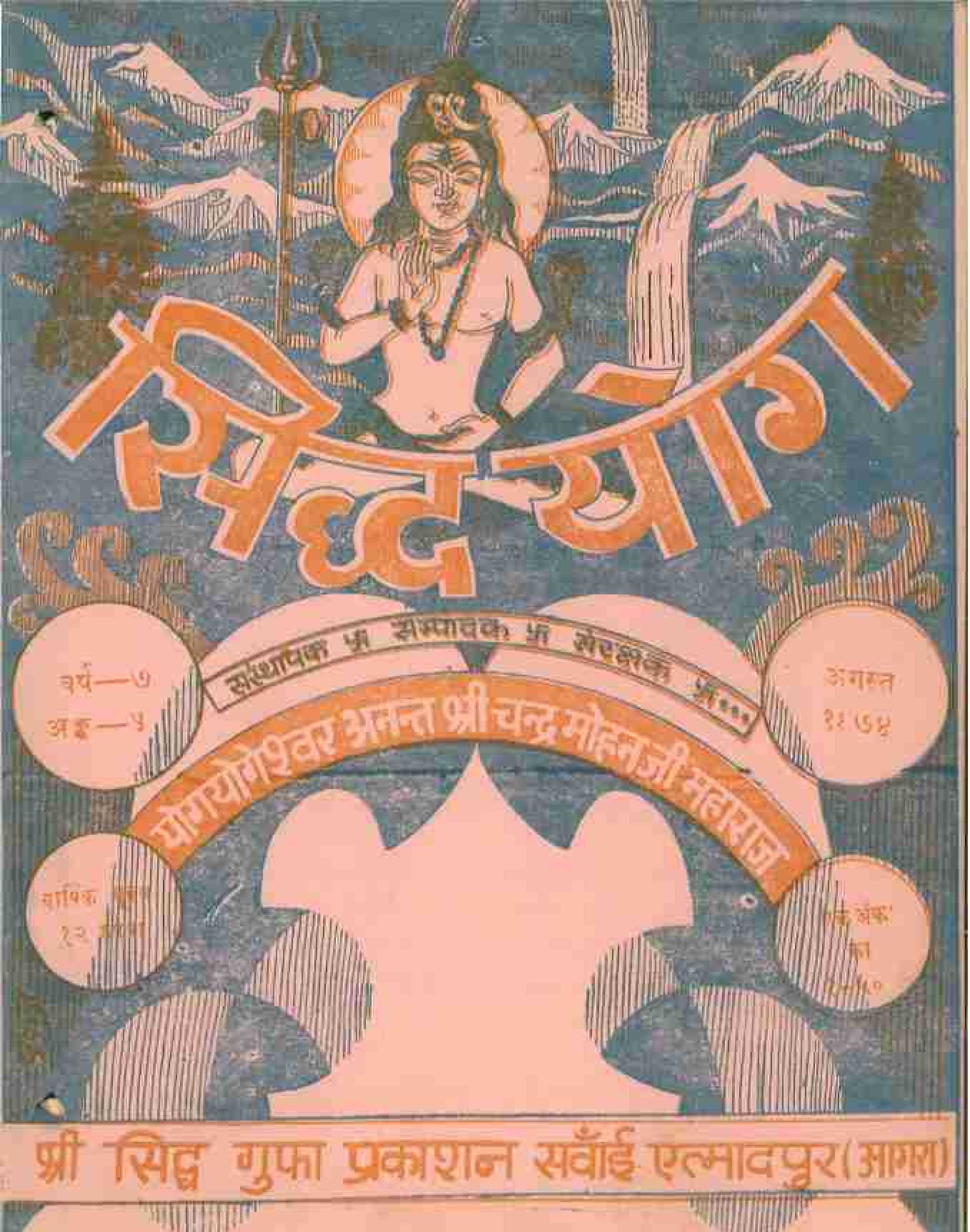

सिद्ध योग
संस्थापक * सम्पादक * संरक्षक श्री १०८
योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज
वर्ष—७
अङ्क—५
अगस्त
१९७४
वार्षिक
१२
अंक
का
श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन सवाँई एत्मादपुर (आगरा)

प्रकाशक

संयुक्त
सम्पादक
श्री दिव्य

इस अंक में :—

पृष्ठ	लेख	लेखक
१	सौकर्य कुतः प्राणिनाम्	....
२	हमारा विशेष लेख—	योगयोगेश्वर अनन्त
	विभूतिपाद की विभूतियां	श्री चन्द्रमोहनजी महाराज
६	श्री सिद्ध गोरखनाथजी और उनके उपदेश का मार्ग	श्री अनन्त माधव फड़के एम० ए०
१४	श्री अनुसुइया के सतीत्व का प्रभाव	सुश्री उमा शर्मा बी० ए०
१७	धैर्य और अध्यवसाय	श्री मां अरविन्द आश्रम
१८	राष्ट्रीय एकता और योग	आचार्य चन्द्रहास शर्मा
२२	निद्रा और ध्यान	श्री ओमप्रकाश पालीवाल
२७	ज्योति अभिनन्दन तुम्हारा	श्री राम सजीवनसिंह
२८	सहजावस्था और योगनिद्रा	श्रीमती सरिता भारद्वाज एम० ए०-हिन्दी संस्कृत
३२	सिद्धमार्ग अथवा नाथ-पंथ	श्री सुरेन्द्रबहादुर
३७	नरक के दारुण दुःख	द्वारा श्री चन्द्रभान गुप्ता सहायक अभियन्ता
४२	ईश्वर-प्रणिधान	श्री स्वामी सर्वदानन्दजी
४५	बौद्धिक विवेचन —	
	शिव-महिमा-सूत्र	श्री सूरजचन्दजी सत्यप्रेमी
४६	श्रद्धा, दिल और दिमाग	स्व० स्वामी सहजानन्द
४	टाइटिल पर	योग का उद्देश्य

सिद्ध योग

वर्ष ७
अङ्क ५

ध्यायं ध्यायं यदिह परम ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविशदन् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः'॥

अगस्त
१९७४

❀ सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ❀

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितिं रात्रौ तदर्धं गतं,
तस्यार्द्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बालत्व वृद्धत्वयोः॥
शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते,
जीवे वारितरङ्गचञ्चलतरे सौख्यं कुतःप्राणिनाम्॥

मनुष्य की पूर्ण आयु एक सौ वर्ष की है, उसमें से आधी आयु ५० वर्ष रात्रि में सोकर बिता दी, बाकी बचे ५० में से २५ वर्ष लड़कपन और बुढ़ापे में बीत गये, इससे बचे २५ वर्ष रोग, पुत्रकलत्र आदि का वियोग आदि दुःख में तथा अपनी जीविका के लिये धनी लोगों की सेवा आदि में बीत जाता है, तो अब जल तरङ्ग के समान चंचल इस जीवन मे प्राणी को सुख कैसे मिल सकता है ?

हमारा विशेष लेख

विभूतिपाद की विभूतियां

[योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज]

हमने इससे पहले 'सिद्धयोग' के गत अंक में 'विभूतिपाद की विभूतियां' नामक लेख प्रकाशित कराया था। उस लेख में धारणा, ध्यान, समाधि एवं संयम की परिभाषा को समझा कर संयम करने की विधि का उल्लेख किया था। संयम करने से उपलब्ध स्थिति प्राप्त होने पर संयम का परिणाम साधक के सामने अवश्य अवश्य आ जाया करता है। मनुष्य को भूत भविष्य का ज्ञान किस प्रकार से प्राप्त होता है इस बात को समझाने के लिये भगवान् पतञ्जलिदेव ने अपने योग-दर्शन के विभूतिपाद में एक सूत्र का उल्लेख किया है। वह सूत्र यह है :—

परिणाम त्रय संयमादतीतानागत ज्ञानम् ॥

इस सूत्र पर व्यास भाष्य की पंक्तियां इस प्रकार से हैं—

धर्म लक्षणावस्था परिणामेषु संयमाद् योगिनां भवत्यतीतानागतज्ञानं धारणा ध्यान समाधित्रयमेकत्र संयम उक्तः, तेन परिणामत्रयं साक्षात्क्रियमाणमतीता नागतज्ञानं तेषु सम्पादयति ॥

अर्थात् धर्म लक्षण अवस्था इन तीन परिणामों में संयम करने से अतीत एवं अनागत ज्ञान योगाभ्यासी साधक को होता है। यहां पर भगवान पतञ्जलिदेव ने अतीत अनागत का नाम इसलिये लिया क्योंकि वर्तमान काल का ज्ञान तो प्रत्येक साधक को प्रतिक्षण होता ही रहता है। संयम के आधार पर ज्ञान का विषय तो अतीत अर्थात् गुजरा हुआ एवं अनागत जो भविष्य में आने वाला है, ही है। गुजरे हुए समय के अन्दर हम किन-किन योनियों में से निकले क्या दुःख और सुख भोगे—कौन कौन मित्र प्यारे और कुटुम्बीजन मिले—यह सभी कुछ विषय चित्त के अन्दर वर्तमान रहने वाले धर्म लक्षण एवं अवस्था परिणामों से जाने जा सकते हैं। हमने अपने पिछले लेख में यह समझाया था कि धारणा ध्यान व समाधि जब तीनों ही अपने एक विषय में सम्यक्स्थित होते हैं बस उसी समाधि का नाम संयम बन जाता है। चित्त के अन्दर जो संस्कार घूमा करते हैं वह संस्कार मनुष्य की आकृति पर भी

टपकने लगते हैं, किसी के चित्त में क्या भाव है इसको हर व्यक्ति नहीं जान सकता और न ही समझा सकता है फिर भी चित्त के अन्दर घूमने वाले भाव मनुष्य की आकृति पर झलकने अवश्य लगते हैं। नीति-शास्त्र का वचन है :—

आकारैरिंगतैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च नेत्र वक्त्र विकारेश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतंमनः।

अर्थात् मनुष्य की आकृति से, इशारों से, चलने-फिरने से, हरकतों से, बोलने से, आँख मुँह के विकारों से भी मनुष्य के भीतर के भावों का हर व्यक्ति को ज्ञान हो जाता है। यदि मनुष्य अपने मन में किसी के प्रति क्रुद्ध है तो उसका क्रोधाभिनय उसके मस्तिष्क पर झलकने लगता है। यह तो हुई लौकिक बात, मनोविज्ञान के विद्यार्थी ऐसे हाव-भावों को देखकर पहचान जाया करते हैं और वह कहने लगते हैं आज आप उदास हैं पता नहीं आपके मन में क्या भाव घर कर गये हैं। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति उल्लसित दिखाई देता है तो उसके अन्तर्गत हर्ष का ज्ञान हर व्यक्ति को हो जाता है और लोग पूछा करते हैं कि आज तो आप बहुत प्रसन्न मालूम देते हैं, क्या मिल गया है हमें भी बताओ।' जब इस प्रकार से चलने-फिरने की हरकतों से साधक का भूत भविष्य का ज्ञान हो जाता है तो फिर एक योगी को जो अपने चित्त के सूक्ष्म संस्कारों के अन्दर संयम करेगा और जिन संस्कारों का उपभोग उसका चित्त अभी तक कर रहा है उसके फलस्वरूप भूतकाल में गुजरे हुए संस्कार- अच्छे हैं या बुरे जैसी भी है उस के सामने आने लगते हैं और वह यह जान जाता है कि हमारा यह चित्त अथवा अन्य सभी औरों का चित्त किन-किन स्थितियों में से निकलकर आया है।

इस समय हम किस प्रकार के संस्कारों का उपभोग कर रहे हैं और यह संस्कार कब तक हम भोग पायेंगे, यह सब बातें चित्त की भावी परिणितियों को देखता हुआ योगी चित्त के अन्दर होने वाले अनागत ज्ञान को भली प्रकार से समझ जाता है लेकिन तब ही समझ पाता है जब वह चित्त के अन्दर गुजरने वाले धर्म, लक्षण एवं अवस्था आदि परिणामों को भली प्रकार जान ले।

सभी प्राणियों की भाषाओं का ज्ञान

योगी का संयम ज्यों-ज्यों अभ्यास के बल से उत्तरोत्तर उत्कृष्ट होता चला जाता है त्यों-त्यों वह जिस जिस विषय को अपने संयम का आधार बनाता है त्यों-त्यों संयम के आधारित विषयों का ज्ञान उसको बिल्कुल स्पष्ट होने लगता है। भगवान् पतञ्जलिदेव अपने एक सूत्र में सभी प्राणियों की बोली का ज्ञान कराने वाले विषय को इस प्रकार लिखते हैं :—

शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरस्तत्प्रविभाग संयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ।

अर्थात् शब्द, अर्थ और ज्ञान यह तीनों मिले हुए रहते हैं। इसी कारण से मनुष्य किसी की किसी भाषा का ज्ञान नहीं कर पाता। शब्द, अर्थ और ज्ञान इन तीनों विभागों में संयम करने से योगी को हर प्राणी की बोली का ज्ञान हो जाया करता है। जैसे किसी व्यक्ति ने कहा "गौ" इस 'गौ' शब्द के अन्दर तीनों ज्ञान छिपे हुए हैं। गौ एक शब्द भी है और गले के लम्बे कम्बल वाली और लम्बे सींगों वाली चार पैरों वाली लम्बे मुख वाली पशु जाति की 'गौ' नाम वाली पशु को 'गौ' कहते हैं ऐसा ज्ञान मनुष्य के मन में रहा करता है। यह उस 'गौ' शब्द का ज्ञान है अर्थात् गौ शब्द के उच्चारण करते ही मनुष्य की आँखों के सामने 'गौ' के स्वरूप का नक्शा बन करके खड़ा हो जाता है। यही 'गौ' शब्द का ज्ञान है और इसके अतिरिक्त गौ सत्ता में विद्यमान चार पावों वाला पशु ही 'गौ' शब्द का अर्थ भूत पशु है। यह है एक 'गौ' शब्द के तीन न्यारे-न्यारे भाग। जिस समय योगी संयम को सिद्ध करके शब्द अर्थ और ज्ञान इन तीन विभागों में मन को अलहदा-अलहदा संयमित करता है तो उसको प्राणीमात्र की भाषा का ज्ञान अनायास होने लगता है। दूसरा इस विषय को इस प्रकार समझ लीजिये कि योगी का चित्त जिस समय संयमित होने लगता है उस समय योगी का चित्तरज से निकलकर तैजस भावों वाला होता है। तैजस भावों वाला चित्त जिस समय जिस किसी विषय को अपने चिन्तन का विषय बनाता है तो वह विषय-चिन्तनमात्र से ही उसके सामने स्पष्ट होने लगता है। भगवान् पतञ्जलिदेव ने 'त्रयमेकत्र संयमः' कह कर कि जहाँ संयम की परिभाषा लिखी है वहाँ किन-किन भूमिकाओं में योगी को संयम करना चाहिये इस विषय का भी स्पष्टीकरण किया है। वहाँ पर व्यास भाष्य में यह बिल्कुल स्पष्ट लिखा है -

ईश्वर प्रसादाज्जितोत्तरभूमिकस्य च नाधर भूमिषु परचित्तज्ञानादिषु संयमो युक्तः, कस्मात् ? तदर्थस्यान्यत एवावगतत्वाद् भूमेरस्या इयमनन्तरा भूमिरित्यत्र योग एवोपाध्यायः,

अर्थात् परम गुरु ईश्वर की कृपा से जो लोग उत्तर भूमियों के संयमित विषय को जान चुके हैं उनको निम्न श्रेणी की भूमिका परचित्त ज्ञानादिकों में संयम की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि उन विषयों का ज्ञान तो साधारण रूप से चित्त के संयमित होने पर हो ही जाता है। इस प्रकार से संयमित चित्त वाला योगी जब कभी भी जिसके शब्द या अर्थ को अपने ज्ञान का विषय बनाता है,

उस समय हृदय में छुपे रहने वाले उस परम गुरु की कृपा से उसको उस विषय का ज्ञान अपने आप ही होने लगता है जैसे गौ ने अपनी लम्बी ध्वनि में "भाँ ऽऽ" इस शब्द का उच्चारण किया और किसी संयमित चित्त वाले योगी ने उस 'भाँ ऽऽ' शब्द को सुन लिया और वह शब्द ही उसके संयम का आधार बन गया वह योगी यह जानना चाहता है इसने 'भाँ ऽऽ' शब्द क्यों कहा। उस स्थिति में योगी का बढ़ा हुआ अभ्यास ही उस भाँ ऽऽ' शब्द के अर्थ और ज्ञान को प्रकाशित करता है। साधारण रूप से 'भाँ' शब्द एक ही है किन्तु गौ ने उस 'भाँ' शब्द का प्रयोग किन अर्थों को लेकर किया है उसके सूक्ष्म ज्ञान को योगी का संयमित मन ही ठीक रूप से प्रकट करता है। साधक की उस जिज्ञासा को वह आत्मिक गुरु काल की अवच्छेदन गति से परे रहने वाले परतत्व, योगी की उस जिज्ञासा की पूर्ति कर देते हैं। वह योगी यह जान लेता है कि इस गौ ने यह 'भाँ ऽऽ' शब्द किन अर्थों में प्रयुक्त किया है। यह प्यासी है या अपने साथ रहने वाली किसी दूसरी गौ को याद कर रही है या भूखी है। इस प्रकार के अर्थों को संयम के आधार पर योगी भली प्रकार से समझ लेता है। यही है शब्द, अर्थ और सङ्केत के ज्ञान को प्राणीमात्र की बोली का ज्ञान प्राप्त करना। प्रथम तो योगी अपने संयमित चित्त आधार पर ही जिस वस्तु के तत्व को जानना चाहता है उसको स्पष्ट रूप से जान ही लेता है कदाचित् उसके ज्ञान में कोई व्यवधान है तो वह सर्वत्र व्यापक परमात्मा हर आत्मा में ओत-प्रोत रहने वाला उसको स्पष्ट ज्ञान करा देता है। इस विषय को मैं एक उदाहरण से स्पष्ट करा देना चाहता हूँ। मुझे अभी-अभी अपने एक गुरुभाई श्री गोपालानंदजी की स्मृति आई। उनका चित्त प्रतिक्षण संयमित रहता था। उन्होंने अपने संयम के अभ्यास को खूब परिपक्व कर लिया था। उनके मन में एक लगन पैदा हुई। उन्होंने यह जानना चाहा कि परमात्मा ने सृष्टि की उत्पत्ति किस प्रकार की। यह सोचते-सोचते ही वह समाधिस्थ हो गये। उनका मन तैजस धर्मों से युक्त था। संयमित मन होने पर उनकी आँखों के सामने एक दिव्य प्रकाश आया। उस दिव्य प्रकाश में से एक दिव्य आवाज सुनाई दी और वह आवाज ही वेद की ऋचा बनकर सामने प्रगट हो गई। ऋचा इस प्रकार थी—

हिरण्यगर्भ समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् सदाधार पृथ्वींद्यामुतेमाम् तस्मैदेवायहविषाविधेमः।

अर्थात् अग्रे हिरण्य गर्भः समवर्तत: स पृथ्वी उतद्यामुवादाधार स हिरण्य गर्भः

ज्ञातस्य भूतः एकः पतिरासीत कस्मै देवाय हविषाविधेमः ; अर्थात्—

'सबसे पहले भगवान् हिरण्यगर्भ पैदा हुए वह प्राणीमात्र के पति थे। हिरण्यगर्भ रूप परमात्मा जो एक चमकते हुए गोले के रूप को धारण करके सामने प्रगट हुए थे उन्होंने पृथ्वी व आकाश को अपने अन्दर धारण किया हुआ था वह परमात्मा सुखः स्वरूप एवं प्राणीमात्र का पति है। उस कल्याणकारी देव के लिये हम अपने हृदयों में श्रद्धा धारण करें।' श्री ब्रह्मचारी गोपालानन्दजी ने जिस समय इस ऋचा को अपने कानों से सुना उसी समय उस अध्यात्म गुरु परमात्मा की कृपा से सृष्टि का उत्पत्ति क्रम उनके सामने प्रकट हो गया एवं परमात्मा ने सृष्टि किस प्रकार बनाई इसको वह भली प्रकार से जान गये। इस सूत्र पर श्री व्यासदेवजी ने जो अपना भाष्य लिखा है वह भी मैं सुविज्ञ पाठकों के स्पष्ट ज्ञान के लिये लिख देना ही उचित समझता हूँ :

तत्र वाग्वर्णेष्वेवार्थवती, श्रोत्र च ध्वनि परिणाममात्रविषयम्, पदं पुनर्ना दानुसंहारबुद्धिनिर्ग्राह्यम् इति, वर्णा एक समयासम्भवित्वात्परस्परनिरनुग्रहात्मा — नस्ते पदम संस्पृश्यानुपस्थाप्याविर्भूता- स्तिरोभूताश्चेति प्रत्येकमपद स्वरूपा उच्यन्ते, वर्णः पुनरेकैकः पदात्मा सर्वा भिधानशक्तिप्रचितः सहकारिवर्णान्तर- प्रतियोगित्वाद् वैश्वरूप्यमिवापन्नः पूर्वं- श्चोत्तरेणोत्तरश्च पूर्वेण विशेषेऽवस्थापित इत्येवं बहवो वर्णाः क्रमानुरोधिनोऽर्थ सङ्केतेनावच्छिन्ना इयन्तएते सर्वाभिधानशक्तिपरिवृत्ता गकारौकार विसर्जनीयाः सास्नाऽऽदिमन्त मर्थद्योतयन्तीति, तदेतेषामर्थसङ्केतेनाव- च्छिन्नानामुपसंहृतध्वनिक्रमाणां य एको बुद्धिनिर्भासस्तत्पदं वाचकं वाच्यस्य संकेत्यते, तदेकं पदमेक बुद्धिविषय एक प्रयत्नाक्षिप्तम अभागमक्रममवर्णं बौद्धमन्त्य वर्ण प्रयत्न व्यापा- रोपस्थापितं परत्र प्रतिपिपादयिषया वर्णैरेवाभिधीयमानैः श्रूयमाणाश्च श्रोतृ- भिरनादिवाग्व्य वहारवासनाऽनुविद्धया लोकबुद्धया सिद्धवत्संपत्तिपत्त्या प्रतीयते, तस्य संकेतबुद्धितः प्रविभागः = एतावता मेवञ्जातीय कोऽनुसंहार एकास्यार्थस्य वाचक इति, सङ्केतस्तु पदपदार्थयरितत- रेतराध्यासरूपः स्मृत्यात्मको योऽयं शब्दः सोऽयमर्थः स शब्द इत्येवमितरेतराध्या सरूपः संकेतो भवति, इत्येवमेते शब्दार्थ प्रत्यया इतरेतराध्यासात्सङ्कीर्णाः—गौरिति शब्दो, गौरित्यर्थो गौरिति ज्ञानं, य एषाम्प्रविभागज्ञः स सर्ववित्, सर्वपदेषु चास्ति वाक्यशक्तिर् वृक्षइत्युक्तेऽस्तीति गम्यते, न सत्तां पदार्थो व्यभिचरतीति, तथा न ह्यसाधनाक्रियाऽस्तीति, तथा च

पचतीत्युक्ते सर्वकारकाणा माक्षेपो, नियमार्थोऽनुवादः कर्तृकर्मकारणानां चैत्राग्नितण्डुलानामिति, दृष्टं च वाक्यार्थे पदरचनं श्रोत्रियश्छन्दोऽधीते जीवति प्राणान् धारयति तत्र वाक्ये पदार्थाभिव्यक्तिः ततः पदं प्रविभज्य व्याकरणीयं क्रियावाचकं कारकवाचकं वा अन्यथा भवति, अश्वः अजापय इत्येवमादिषु नामाख्यातसारूप्यादनिज्ञातं कथं क्रियायां कारके वा व्याक्रियेतेति तेषां शब्दार्थ प्रत्ययानां प्रविभागः, तद् यथा—श्वेतते प्रासाद इति क्रियाऽर्थः, श्वेतः प्रासादइति कारकार्थः शब्दः, क्रियाकारकात्मा तदर्थः प्रत्ययश्च, कस्मात् ? सोऽयमित्यभि सम्बन्धादेकाकार एव प्रत्ययः सङ्केत इति, यस्तु श्वेतोऽर्थः स शब्दप्रत्यययोरालम्बनीभूतः, स हि स्वाभिरवस्थाभिर्विक्रियमाणो न शब्द सहगतो न बुद्धिसहगतः, एवं शब्द एवं प्रत्ययो नेतरेतरसहगत इति, अन्यथा शब्दोऽन्यथाऽर्थोऽन्यथा प्रत्यय इति विभागः, एवं तत्प्रविभाग संयमाद् योगिनः सर्व भूतरुतज्ञानं सम्पद्यत इति ॥१७॥

अर्थात् शब्द, अर्थ और ज्ञान एक दूसरे के साथ मिले हुए के कारण उनका सम्मिश्रण है इसलिये एक शब्द के उच्चारण करने से वह शब्द ध्वनि है ध्वनि आकाश में से पैदा होकर आकाश में विलय हो जाती है किन्तु उस ध्वनि के अन्दर उसका एक ज्ञान भी छुपा हुआ है जिसका एक दूसरे के साथ मिले हुए होने के कारण साधक को आभास नहीं होता कि जो शब्द उच्चारण किया गया है उसमें ज्ञान किस रूप में छिपा हुआ है। जब साधक उनके सम्मिश्रण को हटाकर 'इतरेतराध्यासात्संकरः' के भाव को छोड़कर शब्द ज्ञान और अर्थ तीनों को विभक्त करके शब्द को शब्द के रूप में और ज्ञान के रूप में एवं अर्थ को अर्थ के रूप में न्यारा-न्यारा दीखता है तो उस साधक के हृदय में न्यारा न्यारा ही तत्तदर्थ ज्ञान का उदय होता है। इस प्रकार से योगी जब इनके प्रविभागों में संयम करता है तो प्रयोग की हुई वाणी किस अर्थ को लक्ष्य करती है एवं प्रयोग करने वाले का मन किस ज्ञान को लक्ष्य करता है ऐसा करने पर साधक को प्राणीमात्र की बोलियों का—भाषाओं का ज्ञान हुआ करता है किन्तु एक बात अवश्य याद रखना चाहिये। विभिन्न प्रकार की विभूतियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये सिद्धियों के प्रलोभन से साधक अपने आपका प्रलोभन वश पतन न करे। एक साधारण लोकोक्ति है "एकहि साधे सब सधे, सब साधे सब जाय," साधक को विभिन्न भूमिकाओं में संयम तभी करना चाहिए जबकि वह गुरुदेव के द्वारा निर्दिष्ट भूमिका में अपने मन को पूरी तरह संयमित कर चुका हो। जो साधक अपने नवीभूत साधन में पूरी तरह परिपक्वता प्राप्त नहीं करते और एक भूमिका का थोड़ा-सा ज्ञान प्राप्त होने पर दूसरी भूमिका की ओर अपने आपको ले जाया

करते हैं वह किसी भी प्रकार अपने लक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते। वह "इतः भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः" के नियमानुसार उभयतोभ्रष्ट ही रहते हैं। इसलिये साधक को चाहिये योग की पराकाष्ठा को प्राप्त करने के लिये अपनी आधारभित्ति को पूरा-पूरा बल दें। भगवान् पतञ्जलिदेव के उन शब्दों को याद रखना चाहिये जो उन्होंने सर्वसाधारण के हितार्थ बिलकुल स्पष्ट शब्दों में सूत्र रूप में लिख दिये हैं वह सूत्र यह है :—

सः तु दीर्घकाल नैरन्तर्यसत्कारा-सेवितो दृढ़भूमि।

साधक अपने अभ्यास में परिपक्व तभी हो पाता है जब वह अपने उस अभ्यास को लम्बे समय तक लगातार नियमानुसार श्रद्धा-पूर्वक करता रहे। थोड़ी-सी साधना बढ़ जाने पर जो साधक विभिन्न प्रकार के लालचों में पड़ जाया करते हैं एवं विभिन्न प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त करने के लिये कभी उधर कभी इधर लगते हैं। उन्हें अपने लक्ष्य—समाधि की सिद्धि नहीं प्राप्त होती।

हमने अपने इस लेख में पातञ्जल योगदर्शन के सिद्धान्तानुसार एवं अनुभवी महात्माओं की निजानुभूतियों को आधारित करके 'सर्वभूतरुतज्ञानं' के विषय को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। योग विद्या हमारी अमरनिधि है इसको प्राप्त करके अन्य कुछ भी प्राप्तव्य शेष नहीं रहता। आवश्यकता इस बात की है साधक उत्साही एवं वीर्यवान हो तो सफलता उसका पूरा-पूरा आदर करती है और वह अपने चरम लक्ष्य को अवश्य-अवश्य पा लेता है।

प्रबोधामृत

— सदाचार द्वारा, महापुरुषों के चरित्र द्वारा, अपने गुरुजनों द्वारा सुनिश्चित धर्म पहचाना जाता है, कर्त्तव्य कर्म की पहचान होती है और शुभ-अशुभ कर्म का ज्ञान होता है।

—महात्मा और योगियों के कर्म में एकता होती है और दुरात्मा तथा अयोगियों के मन वचन कर्म में अनेकता होती है।

—जीवों में कुछ जीव ऐसे होते हैं जो सदा शुभ ही शुभ कर्म करते हैं। उनका मन शुभ सोचता, इन्द्रियां शुभ करतीं और देह शुभ करता है। ऐसे लोग सत्पुरुष कहलाते हैं।

—इस तथ्य का ज्ञान कि हम आत्मा हैं हमको आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। आत्मा अकेला रहना उचित नहीं समझता। वह परम सखा परमात्मा की खोज में निकल पड़ता है और उसे पाकर उसे वांछित आनन्द प्राप्त हो जाता है। —श्रुति-सार

श्री सिद्ध गोरक्षनाथजी और उनके उपदेश का मार्ग

[श्री अनन्त माधव फड़के एम० ए०]
(प्रवक्ता एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग सेण्ट ऐण्ड्रज कालेज)

अत्यन्त प्राचीनकाल में ही भारतवर्ष के महागुरु सिद्ध गोरक्षनाथजी का अवतार हुआ था। इतना प्रभावशाली महिमान्वित महापुरुष अन्य कोई नहीं हुआ है। आज भी भारतवर्ष के कोने-कोने में इनके अनुयायी लोग है। शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन श्री गोरक्षनाथजी का ही है। भारत मे ऐसी कोई भाषा नही जिसमे श्रीगोरक्षनाथजी की कथा न मिलती हो। परन्तु इनके जन्म-स्थान के निश्चित् ज्ञान के लिये कोई आधार नही मिलता है। जो आधार मिलते हैं उनमें भी नाना प्रकार के ऊहापोह का स्थान है। अन्वेषक अपने-अपने अभिप्राय के अनुसार भिन्न-भिन्न जन्म स्थान की ऊहा करते है। कुछ पौराणिक आधार इस प्रकार है :—

(१) स्कन्द पुराण – ब्रह्म नारद संवाद में भगवद्गोरक्षनाथ का अवतार कथा वर्णन।

(२) भविष्य पुराण प्र. स. ४–३. अ. १२

(३) स्कन्द पुराण केदारखण्ड शिवाशिव संवाद।

„ अध्याय ४५ भिल्लाङ्गण पीठवर्णन
„ „ ४६ त्रिशीर्ष पीठ वर्णन के बलगा क्षेत्र वर्णन
„ „ ७४ संगीत शास्त्रीय प्रकरण।

(४) ब्रह्माण्ड पुराण के ३, वा, पृ० ३४४१ ३७ अध्याय ललितोपाख्यान हयग्रीव, अगस्त्य संवाद।

(५) नारद पुराण—पृ० ३- भा, वसु मोहनी संवाद इत्यादि।

श्री गोरक्षनाथ के नाम पर प्रसिद्ध किये हुये अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। अनादि योग शास्त्र को गोरक्षनाथजी द्वारा एक सुव्यवस्थित रूप देने का विषय उनके ग्रन्थों द्वारा स्पष्ट होता है। आज भी भारत के अनेक महाक्षेत्र के पीठों में दूसरे मतों के आक्रमण से विकृत गोरक्षनाथ सम्प्रदाय के अवशेष मिलते है। "योग सम्प्रदाया विष्कृति" नामक ग्रन्थ में गोदावरी तीर के "चन्द्रगिरि" में गोरक्षनाथ का अवतार कहा गया है। नेपाल राजकीय पुस्तक भण्डार के "गोरक्ष सहस्र" नामक छोटे ग्रन्थ में "महार्थ मंजरी" ग्रन्थ में दक्षिणापथ के 'वडव' नामक देश में महामन्त्र प्रसाद से महा बुद्धिशाली गोरक्षनाथ का अवतार बताया गया है। और भी कुछ बातें इस प्रकार से हैं कि आदिनाथ परमेश्वर ही गोरक्षसिद्ध रूप से सत्ययुग में पेशावर, त्रेतायुग में गोरखपुर, द्वापर युग में द्वारका कलिकाल काठ्या में वाड़ के गोरखमण्डी में प्रादुर्भाव होने का विषय ज्ञात होता है। अलौकिकता से

भरपूर परम सिद्ध गोरक्षनाथजी का जीवन अद्भुत कथानकों से भरा पड़ा है।

गोरक्षनाथजी सिद्ध हैं। इनके मत को नाथ सम्प्रदाय कहा जाता है। इसे अवधूत मत, सिद्ध मत भी कहते हैं। "ना" का अर्थ अनादिरूप और "थ" का अर्थ भुवनत्रय के स्थापन कर्ता होता है। राजगुह्य नामक ग्रन्थ में—

नाकारो नादिरूपःस्यात्, थकारस्थाप्यते सदा, भुवनत्रय मेवैकः, श्री गोरक्ष नमोस्तुते।

ऐसा वर्णन किया गया है। इसे बारह पंथी भी कहते हैं। (१) सत्यनाथी; (२) धर्मनाथी (३) रामपन्थ (४) नाटेश्वरी (५) कन्हड़; (६) कपालिनी; (७) वैरागपन्थ (८) मानानाथी: (९) आदिपन्थी; (१०) पागलपन्थ; (११) धज पन्थ (१२) गंगानाथी।

इनकी प्रतिशाखाएँ भी भारत और अफगानिस्तान में फैली हुई है। योगेश्वर गोरक्षनाथजी ने मुख्यतः हठयोग का उपदेश दिया है।

"हकारः कथितः सूर्यः उकारः चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगात् हठयोगो निगद्यते" ॥

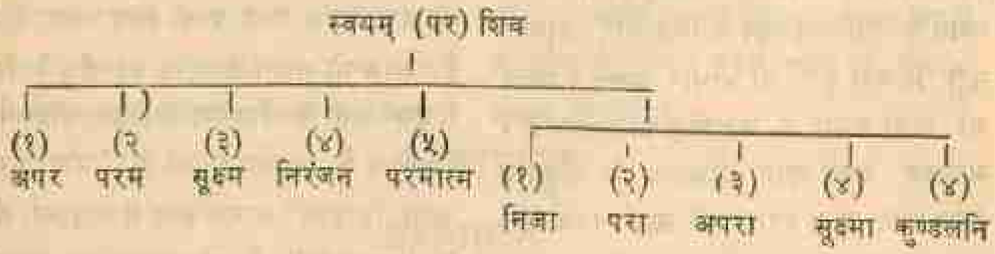

सिद्धान्त रूप में आनन्दावस्था से युक्त शिव क्रम से जीव रूप धारण करने के लिए आगे बढ़ता है। तब उसकी अवस्था क्रमेण स्थूल होता जाता है। (१) परपिण्ड (२) आद्यपिण्ड; (३) साकार पिण्ड; (४) प्राकृतपिण्ड; (५) अवलोकन पिण्ड; (६) गर्भ पिण्ड इस अन्तिम पिण्ड से स्थूल शरीर होता है यह विषय सिद्ध सिद्धान्त संग्रह में प्रतिपादित है। परशिव ही अपनी निसृक्षारूप इच्छाशक्ति से इस जगद्रूप में परिणमित हुआ। प्रपंच में रहने वाला प्रत्येक पिण्ड वस्तुतः ब्रह्माण्ड रूप ही है। ब्रह्माण्ड में रहने वाले सब तत्त्व पिण्ड में भी हैं लेकिन सत्व, रज, तम, काल और जीव (प्राणशक्ति) इनके न्यूनाधिक्य से इनमें भेदमात्र दिखाई पड़ता है। विकासावस्था में दिखाई पड़ने वाले इन भेदों को सत्य ही समझना चाहिये।

कुण्डलिनी समस्त विश्वव्यापिनी शक्ति है। जब वह सृष्टि करने को उद्यत होती है तो स्थूल होती जाती है। इससे तीन तत्त्व स्फुरित होते हैं जो (१) सदाशिव (२) ईश्वर

और (३) शुद्ध विद्या है। इस प्रकार अहन्ता प्राप्ति उपर्युक्त प्रकार पांच अवस्था से युक्त होती है जिन्हें आनन्दावस्था कहते हैं वे ये हैं। (१) परमानन्द; (२) प्रबोध (३) चिद्रदय (४) प्रकाश; (५) सोहं हैं।

नाथ मार्ग अद्वैत की तरह होते हुए भी शंकराचार्यजी के अद्वैत से भिन्न जनाने के लिए "द्वैताद्वैत विलक्षिण" वादी के नाम से पुकारते हैं। अतः यह मत द्वैत और अद्वैत दोनों से अतीत "अखण्ड ज्ञान रूप निरंजन स्वरूप शून्य" है। प्रपंचशक्ति स्फोटवाद के ऊपर ही जगत् सृष्टि प्रारम्भ होती है अतः शक्ति ही सचमुच जगनिर्माण कर्तृणी है शिव नहीं है।

यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि "जगत्सृष्टा शिव ही है शक्ति उसे निर्वहण मात्र करती है। इस हालत में सृष्टि का प्रधान कर्तृत्व उपास्यत्व किसे होना चाहिये? संसार का मुख्य कर्तृत्व और नियन्तृत्व शिव को ही होना चाहिये, शक्ति उन्हें सहायक मात्र है अतः इस सहाय करने वाली को उपास्य किस तरह मानना चाहिये?

इसका उत्तर इस प्रकार है। जित्यादि कार्यों के लिए कोई भी एक कारण अवश्य होना चाहिये। इस अनुपपत्ति के निवारण के लिए ही शिव और शक्ति की कल्पना स्वीकार की गई है। धर्मी धर्म अभिन्न है। शिव धर्मी है शक्ति उसका धर्म है फिर भी व्यवहार काल में धर्म और धर्मियों में कुछ भेद मानना चाहिये। इसी तरह धर्मी शिव और धर्म शक्ति इन दोनों में भेद न होते हुये भी व्यवहार के लिए भिन्न की तरह ग्रहण करना चाहिये। शिव (परशिव) रूपातीत, गुणातीत, शून्यरूप निरालम्बन स्वभाव वाला है इसलिये उनका स्वरूप निर्धारण करना असम्भव है। उपासना के लिये पर शिव उपयुक्त नहीं हो सकते हैं। उसके स्वरूप से अभिन्न किन्तु व्यवहार दशा में भिन्न की तरह प्रतीत होने वाली शक्ति ही उपासना योग्य होती है। उपासना के द्वारा परशिव के साथ शक्ति को (समस्त संसार को अभिन्न समझना ही साधक का परम लक्ष्य होना चाहिये।

मूढ़ लोग मोक्ष प्राप्ति के अनेक मार्ग बतलाते हैं किन्तु षट्चक्र, षोडशाधार, द्विलक्ष्य, व्योमपंचक न जानने वाला योग सिद्धि नहीं पा सकता है। कोई कहता है कि ध्यान कलाकरण, सम्बद्ध प्रयोग से उत्पन्न रूप, बिन्दु, नाद, चैतन्य, पिण्ड आकार को मोक्ष कहते हैं। इसी तरह अनेक मार्गों की कल्पना की गई है। लेकिन ये सब मोक्ष मार्ग नहीं है। जब सहज समाधि के द्वारा मन से मन को देखा जाता है तब जैसी स्थिति उत्पन्न होती है वही सच्चा मोक्ष स्वरूप है।

हठयोगाभ्यासी शरीर को बिना अच्छी तरह जाने सिद्ध नहीं हो सकता है।

पायु और उपस्थ के बीच मेरुदण्ड में रहने वाले त्रिकोण चक्र के ऊपर एक स्वर्य-

भूलिंग है इस चक्र को अग्निचक्र भी कहते हैं। इस त्रिकोण चक्र में रहने वाले स्वयं भूलिंग के ऊपर सर्प की भांति तीन बार घूमकर कुण्डलिनी शक्ति है। यह करीब आठ बार टेढ़ी-मेढ़ी होकर सोई हुई है। यह ब्रह्म व्यापिनी महाकुण्डलिनी रूप शक्ति के वृष्टि रूप से व्यक्त होता है। यह शक्ति ही ब्रह्मद्वार को रोककर सो जाती है। इसे जगाकर शिव के साथ समरस कराना ही योगी का चरम-लक्ष्य है। इस प्रकार कुण्डलिनी को जगाने से झट से ब्रह्म द्वार अनायास खुल जाता है। इसे उदबोध कराने के लिए कुछ विशिष्ट योग की आवश्यकता होती है।

शरीर में परमशक्तिशाली तीन वस्तुएँ हैं। वे परम चञ्चल होने के कारण मनुष्य की कामना की पूर्ति नहीं हो पाती है। पहली वस्त्र "बिन्दु" अर्थात् शुक्र धातु—वीर्य है उसे ऊपर की तरफ खींचकर स्थिर करने में सफल हो तो अन्य दो वस्तुएँ आसानी से स्थिर होती हैं। इसके बारे में अमेरौध शासन में कहा है कि - मेरुदण्ड के मूल में सूर्य चन्द्र नाड़ियों के पास योनि स्थान पर स्वयंभूलिंग है। इसे पश्चिम लिंग भी कहते हैं। वहाँ पुरुषों को शुक्र और स्त्रियों को रजस निकलने का मार्ग है। वहाँ काम, विषहर, और निरञ्जन नामक तीन देवता हैं। वीर्य स्खलन के लिए दो स्थितियाँ बताई गई हैं जिन्हें प्रलयकाल और विषकाल नामक पारिभाषिक शब्द है। इन दोनों स्थितियों में आनन्द होता है। किन्तु वह घातक है। इन दो आनन्दों के अधिष्ठातृ देवता काम और विषहर हैं। तीसरी अवस्था नानाभावविनिर्मुक्त सहजानन्द अवस्था है जिसमें शुक्र ऊर्ध्वमुख होकर चलता है उसी समय सहज समाधि प्राप्त होती है। इसके लिये नाडियों को शुद्ध करना आवश्यक है। इस शुद्धि के लिए हठयोगी को षटकर्म का आचरण आवश्यक है। हठयोग के ग्रन्थों में शुद्धि का क्रम विस्तार रूप से मिलता है। उसमें धौती, बस्ति, नेति, त्राटक, नौली, कपालभाति नामक षट्कर्म मुख्य रूप से हैं। इन क्रियाओं से नाड़ियों की शुद्धि होकर शुक्र धातु शुद्ध होता है। सुषुम्ना नाडिका द्वार की भी शुद्धी होता है।

उपर्युक्त त्रिकोण चक्र के कुछ ऊपर चार दल के कमल के आकार का "मूलाधार" नामक एक चक्र है। इससे कुछ ऊपर नाभि-स्थान पर छः दल के कमल के आकार का "स्वाधिष्ठान चक्र" है। इसके ऊपर दस दल के कमल के आकार का "मणिपूरक" चक्र है। इसके ऊपर हृदय स्थान में बारह दल के कमल के "अनाहत चक्र" है। इसके ऊपर कण्ठ स्थान पर सोलह दल के कमल के आकार का "विशुद्धि चक्र" है। इसके ऊपर दो भौंओं के बीच दो दल कमल के आकार का "आज्ञाचक्र" है। ये ही "षट्चक्र" हैं। ये छः चक्र मिलकर पचास दल होते हैं। स्वर व्यंजनाक्षरों की संख्या भी पचास है। एक एक दल में एक एक अक्षर की कल्पना

करनी चाहिए। एक चक्र मे एक-एक देवता (शक्ति) का निवास है। इन षट् चक्रों को भेदन कर ऊपर जाने से मस्तक में "शून्य चक्र" मिलता है। वहां कुण्डलिनी को ले आना ही योगी का मुख्य ध्येय होता है। शून्य चक्र सहस्र दल के कमल के आकार का होने के कारण उसे सहस्र संख्या की भी कल्पना करते हैं। इस स्थान को ही पिण्डाण्ड का कैलास कहते हैं। वहीं पर शिव का वासस्थान है। वहाँ तक जाकर मिलने वाली सुषुम्ना नाड़ी को शाम्भवी शक्ति कहते हैं। भगवान गोरक्षनाथजी ने षोडशाधार का उपदेश दिया है जो बाह्यलक्षण है। षट्चक्र अन्तर्लक्ष्य है।

गुरु कृपा से ही योगियों को परमप्रिय कैवल्यावस्था नामक सहज समाधि प्राप्त होती है। केवल ज्ञान से या वेद पाठ से या वैराग्य से प्राप्त नहीं हो सकती है। उनकी कृपा से परमपद कभी दूर नहीं हो सकता। शिवशक्ति सामरस्य रूप परमपद भी प्राप्त होता है।

अनुबुभूषति यो निजविश्रमं,
सद्गुरुपाद सरोरुहमाश्रयेत्।
तदनुसंसरणात् परमं पदम्,
समरसीकरण च न दूरतः॥

योगी अरविन्द के वचन

१. सच्चे अध्यापन का पहला नियम यह है कि कोई चीज पढ़ायी नहीं जा सकती। अध्यापक प्रशिक्षक या कठोर अधिकारी नहीं, सहायक और मार्गदर्शक होता है।
२. सभी धन भगवान् का है। धनवान् धन के मालिक नहीं न्यासी हैं। आज वह उनके पास है और कल किसी और के पास होगा। सब कुछ इस पर निर्भर है कि वे न्यास का क्या उपयोग करते हैं, किस भावना और किस चेतना के साथ किस उद्देश्य से उपयोग करते हैं।
३. सत्य ही सच्ची आध्यात्मिकता का आधार है, साहस उसकी आत्मा है।
४. आदर्श को मानना प्रायः उसके अनुसार न जीने के लिये एक बहाना बन जाता है।
५. इसका कोई महत्त्व नहीं है कि लोग तुम्हारे बारे में क्या सोचते हैं। महत्त्व की बात यह है कि तुम सचमुच क्या हो।
६. भय को हमेशा त्यागना चाहिये। तुम जिस चीज से डरते हो उसके आने की सम्भावना बढ़ जाती है, भय भय के कारण को आकर्षित करता है।

श्री अनुसुइया के सतीत्व का प्रभाव

[सुश्री उमा शर्मा बी० ए०]

'सिद्धयोग' के गत अंकों में समय-समय पर मैंने कुछ लेख लिखकर नारी जाति की महत्ता और आदर्शों को बताने का प्रयास किया है। इसी प्रकार का प्रयास मैं प्रस्तुत अंक में कर रही हूँ। यदि ठीक प्रकार से विचार किया जाय तो विदित होगा कि नारी—भगवती महामाया दुर्गा की स्वयं स्वरूपा है, बशर्ते वह शास्त्र विहित मार्गों का अनुसरण करती हो। पतिव्रता स्वयं शक्ति का स्वरूप होती है। स्कन्द पुराण के अन्तर्गत भगवान व्यासदेव कहते हैं—

पुराणां सहस्रं च
सती स्त्री हि समुद्धरेत।
पतिः पतिव्रतानां च
मुच्यते सर्व पातकात्।
नास्ति तेषां कर्म भोगः
सतीनां व्रततेजसा,
तया सार्द्धं च निष्कर्मी
मोदते हरिमन्दिरे॥

अर्थात् एक पतिव्रता नारी अपने पातिव्रत्य से हजारों का उद्धार कर सकती है। पतिव्रता का पति उसके पातिव्रत्य के प्रभाव से सब प्रकार के पापों से छूट जाता है, उसको कर्मफलों का भोग प्राप्त नहीं होता। वह उस सती के साथ भगवान श्री हरि के लोक में अनन्त समय तक वास करता है। आप लोग अपने मन में विचार करते होंगे कि पतिव्रता में इतनी बड़ी शक्ति क्यों आ जाती है? शायद आपने "योग दर्शन" (भगवान पतञ्जलिजी द्वारा विरचित) का अध्ययन किया होगा—उन्होंने एक सूत्र में कहा है—

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः

इस पर भाष्य लिखते हुए श्री व्यासदेवजी महाराज ने ब्रह्मचारी की शक्ति का आदर्श फल बताते हुए लिखा है :—

ब्रह्मचारी विनयेषु शक्तिमाधातुं-शक्तो भवति॥

अर्थात् ब्रह्मचारी के अन्दर इतनी बड़ी शक्ति आ जाती है कि वह अपने विनीत शिष्यों के अन्दर अपनी शक्ति से शक्ति जाग्रत करने की योग्यता रखता है। यह बात तो स्त्री और पुरुष सभी के लिये सामान्य है। किन्तु यह आप लोग भली प्रकार से जानते ही हैं कि स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा किसी भी प्रकार के व्रत आचरण का निभाना बहुत ही महत्त्व रखता है। भले ही उनके रास्तों में कितने ही बड़े-बड़े अन्तराय क्यों न आते हों, जबकि सती का रोम-रोम अपने पति के लिये होता है। वह उसको प्रसन्न रखने

और सुखी करने के लिये हजारों दुखों को सहन करती है। वह पति के लिए अपने आपको पूर्ण न्यौछावर कर डालती है। अपने दुखों को कभी नहीं देखती।

ऐसी ही एक आदर्श नारी प्रातः स्मरणीया परमयोगिनी, महान पतिव्रता श्री अनुसुइयाजी का चरित्र चित्रण मैं यहाँ संक्षेपतः प्रस्तुत कर रही हूँ।

पुण्यश्लोका श्री माता अनुसुइयाजी स्वायम्भुव मनु की पुत्री देवहूति की दुहिता थीं। महर्षि कर्दम इनके पिता थे। "सिद्धेश्वर" कपिल (जो भगवान विष्णु के अवतार माने जाते है) इनके छोटे भाई थे। आप लोग सोचते होंगे कि सिद्ध किसे कहते हैं। सुनिए—

कर्त्तुं अकर्त्तुं अन्यथा कर्त्तुं— सर्वथा सक्तः स सिद्धः।

अर्थात् करदे, किये को बिगाड़ दे और बिगड़े को फिर बना दे वह सिद्ध है।

श्री अनुसुइयाजी अत्यन्त सत्य परायणा, धर्मशीला, सौम्या; सदाचारणी; विनयवती, लज्जावती, क्षमाशीला, परमसहिष्णु पतिव्रता एवं परम योगिनी थीं। और समस्त दिव्य गुणों से सम्पन्न थीं। अत्यन्त संयमी एवं तपस्विनी होने के कारण से ब्रह्माजी के मानस पुत्र महर्षि अत्रिजी को इन्होंने पतिरूप में प्राप्त कर लिया था।

महर्षि के चरणों में इनकी अनन्य प्रीति थी। वह सदैव ऋषि के मनोऽनुकूल उनकी सेवा में लगी रहती थीं। उन महान ऋषि के लिये ही इन्होंने अपने जीवन का उपयोग समझा था। इन्होंने अपने जीवन में पतिसेवा को ही प्रधानता दी, इसीलिये सतियों में यह सर्वश्रेष्ठा एवं प्रातः स्मरणीया समझी जाती है।

एक समय की बात है कि महर्षि अत्रिजी हजारों वर्षों के लिये समाधि में बैठ गये— इसका स्पष्टीकरण करते हुए समाधि किसे कहते हैं शास्त्रों में कहा है :—

समाधि समतावस्था जीवात्म-परमात्मनः॥

अर्थात् जीवात्मा परमात्मा को एकावस्था (एकता) को समाधि कहते है।

महर्षि अत्रिजी समाधि में बैठे हुए थे। माता अनुसुइयाजी सेवा का अवसर ताकती रहती थीं कि कब ऐसा अवसर आवे जब पतिदेव मुझे कुछ सेवा की आज्ञा दें। जब बहुत समय बीत गया तब अत्रि ऋषि हजारों वर्षों के बाद समाधि से उठे और आँखें खोलीं तो देखा कि सती अनुसुइया सामने खड़ी हुई है। आँखें खोलते ही देवी अनुसुइयाजी को आज्ञा दी कि साध्वी! जल पिलाओ! आज्ञा पाते ही माता अनुसुइया जल लेने के लिये चल दीं जंगलों में चारों ओर जल ढूँढ़ रही थीं किन्तु कहीं भी जल की एक भी बूँद नहीं प्राप्त हुई। माता अनुसुइया बड़ी चिन्तित-सी हो रही थीं। एक तो चिन्ता

थीं कि पतिदेव ने आज वर्षों के बाद सेवा का अवसर दिया है उसे मैं पूर्ण नहीं कर पा रही हूं उधर स्वयं भी प्यासी थीं। और जंगलों में घूमते-घूमते—काफी दूर जाने पर बहुत समय के बाद एक जगह कुटिया देखकर सोचने लगीं कि शायद यहां जल मिल जाये। कुटिया के पास पहुँचीं। देखती हैं कि एक सुन्दर कन्या उस कुटिया से निकलकर चली आ रही है। उसका तेज बड़ा अलौकिक है। माता अनुसुइया को उस तपस्विनी ने प्रणाम किया और कहा माता आप किस लिये इतनी अधीर हो रही हैं? माता अनुसुइया ने कहा बेटी! जल की आवश्यकता है मेरे पतिदेव जो वर्षों से समाधि में बैठे हुए थे उन्होंने मुझे जल लाने की आज्ञा दे सेवा का अवसर दिया है, किन्तु सारे जंगल में कहीं भी जल की बूंद मुझे प्राप्त नहीं हुई।

नर्बदा नामक कन्या ने कहा माता पानी मुझे भी प्राप्त नहीं होता पर मैं तो योग शक्ति के द्वारा जीवित रहती हूं यहां जीव जन्तु भी सभी प्यासे रहते हैं। वर्षा भी नहीं होती। माता अनुसुइया ने कहा बेटी कहीं से पानी मिल जायेगा तभी मैं लौटकर जाऊंगी अन्यथा यहीं प्राण त्याग दूंगी। इसलिये बेटी पानी का तुम कहीं से भी प्रबन्ध कर दो! इसे कहते हैं—

"अमानीमानदामान्यः"

अर्थात् स्वयं माता अनुसुइया ने यहां पर नर्बदा कन्या को मान दिया है जबकि माता अनुसुइया स्वयं तपस्वनी थी और पानी पैदा कर सकती थीं उन्होंने नर्बदा से कहा बेटी! पानी अवश्य मिलना चाहिये। मैं बहुत अधीर हो रही हूं।

माता अनुसुइया की अधीरता को देखकर नर्बदा देवी ने उसी समय मां गंगे से प्रार्थना की। हे मां गंगे अब तू ही माता अनुसुइया के प्राण बचावेगी। ऐसा कहते ही मां गंगे को प्रगट होना पड़ा। मां गंगे के प्रगट होते ही माता अनुसुइया जल लेकर चलने लगीं और नर्बदा को हृदय से आशीर्वाद देने लगी। वे कहने लगीं बेटी! तू ने मेरी कठिन समय में सहायता की है अतः मेरा हृदय भी तेरे लिये प्रसन्न है। तू बरदान मांग जो मांगना चाहे! नर्बदा ने कहा—माता! मेरे पति का बिछोह मुझसे हो गया है। अतः मैं भी अपने पति के पास ही जाना चाहती हूँ। इतनी बात सुनते ही माता अनुसुइया ने अपने पातिव्रत्य की शक्ति से उसी समय आज्ञा दी कि स्वर्ग से एक विमान आ जाय। ऐसा संकल्प करते ही स्वर्ग से एक बहुत सुन्दर विमान उतर आया। उस विमान में नर्बदा देवी को बैठाकर और स्वर्ग को भेजकर माता अनुसुइया अपने पतिदेव महर्षि अत्रिजी के लिये पानी लेकर दौड़ी चली गईं और उन्हें सादर जल पिला दिया। क्रमशः

धैर्य और अध्यवसाय

पंजाब के निवासियों का एक गाना है :—

सदा ना बाँगी बुलबुल बोले,
सदा ना बाग बहारां।
सदा ना राज खुशी दे होंदे,
सदा ना मजलिस यारां।

इस गीत का भाव यह है कि हम सदैव सन्तुष्ट रहने की आशा नहीं कर सकते तथा धीरज एक अत्यन्त उपयोगी गुण है। हमारे जीवन में ऐसे दिन कम नहीं आते जबकि हम इस गुण का अनुशीलन न कर सकते हों।

तुम्हें एक अत्यन्त व्यस्त व्यक्ति से कुछ काम है। तुम उसके घर जाते हो। जहाँ पहले से ही कई मिलने वाले उपस्थित हैं; मिलने से पहले वह तुमसे बड़ी लम्बी प्रतीक्षा करवाता है। पर तुम वहाँ शान्तिपूर्वक, शायद कई घण्टे तक, ठहरे रहते हो। तुम धैर्यवान हो।

किसी और समय, जिससे तुम मिलने जाते हो वह अपने घर से अनुपस्थित होता है। अगले दिन तुम फिर जाते हो पर उसका द्वार तुम्हें अब भी बन्द मिलता है। तीसरी बार तुम फिर पहुँचते हो। अबके वह बीमार है, मिल नहीं सकता। कुछ दिन बाद तुम उसके घर का रास्ता फिर पकड़ते हो। यदि तब भी कोई नयी घटना उससे मिलने से तुम्हें रोक देती है, तो भी तुम निरुत्साहित नहीं होते और तुम तब तक अपने प्रयत्न में लगे रहते हो जब तक तुम उससे मिल नहीं लेते। इस प्रकार का धैर्य अध्यवसाय कहलाता है। अध्यवसाय—यह सक्रिय धैर्य है, अर्थात् गतिशील धैर्य।

जेनेवा का रहने वाला प्रसिद्ध नाविक कोलम्बस स्पेन से जहाज लेकर पश्चिम के अज्ञात समुद्रों को पार करने निकला। दिन बीत गये, अपने साथियों की बड़बड़ाहट को सहते हुए वह एक नयी पृथ्वी की खोज निकालने की धुन में दृढ़ रहा। विलम्ब हुए, कई कठिनाइयां उपस्थित हुईं पर जब तक वह अमरीका के किनारे के द्वीपों तक नहीं पहुँचा, उसने दम नहीं लिया। इस प्रकार उसने एक नया महाद्वीप खोज निकाला।

वह अपने साथियों से किस बात की आशा रखता था? वह उनसे केवल यह चाहता था कि वे धैर्य रखें। उनका कर्तव्य केवल इतना था कि वे उस पर भरोसा रखें और नम्रतापूर्वक उसकी आज्ञा से अधीन रहें। पर इस लक्ष्य-प्राप्ति के लिये स्वयं उसके अन्दर किस वस्तु का होना आवश्यक था? उसमें उस अक्षुण्ण उत्साह और गम्भीर लगन की जिसे अवअध्यवसाय कहते हैं।"

—श्री मां, अरविन्द आश्रम

राष्ट्रीय एकता और योग

[आचार्य चन्द्रहास शर्मा एम० ए० एम० एड०]

आज विश्व के राष्ट्रों में पारस्परिक सहयोग, सद्भाव तथा मानव-कल्याण के स्थान पर शोषण, वैषम्य, असहयोग और अशान्ति का बाजार गर्म हो रहा है। मनुष्य, मनुष्य के अधिकार, बल और दर्प का दूसरे को गिराने में जितना अधिक प्रयोग कर सकता है, वह उतना ही अधिक शक्तिशाली राष्ट्र समझा जाता है। जो तथ्य राष्ट्रों के के सम्बन्ध में सच है, वे ही तथ्य प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में भी सच है। आज विश्व का प्रत्येक मनुष्य सुख, शान्ति की तलाश में दिग्भ्रमित हुआ भटक रहा है। पश्चिमी देशों के निवासियों के पास भौतिक सुख-सम्पदा की प्रचुरता कष्ट का कारण है। भौतिक साधनों को भोगते-भोगते व्यक्ति ऊब गया है, अतः वह हिप्पी बनकर रसाभास और आनन्दाभास के पीछे दौड़ रहा है। दूसरी ओर अविकसित तथा विकासमान भारत जैसे देश के निवासी भौतिक सुख-साधनों के अभाव में कष्ट पा रहे हैं। विश्व-गुरु कहलाने वाले भारत जैसे देश में 'रोजी और रोटी' के लिये घिराव, बन्द, हड़ताल, तालाबन्दी, गोली, पथराव और नृशंस हत्या से लेकर देश को विघटन की दिशा में ले जाने वाली शक्तियों का ताण्डव नृत्य प्रतिदिन दिखायी पड़ता है। भ्रष्टाचार, शोषण, जन-पीड़न, मिलावट, अन्याय ने समाज के अच्छे और बुरे प्रत्येक व्यक्ति को मर्माहत कर दिया है।

मनुष्य की सारी क्रियायें स्वार्थ और अनात्म पदार्थों को जुटाने तक ही सीमित हैं। वह अपने भाई को कितना अशान्त बना सकता है, इससे ही उसका महत्त्व सिद्ध होगा। अभी कुछ दिन पूर्व ही कानपुर के अस्पताल में विषाक्त ग्लूकोज से अनेकों व्यक्तियों की जानें चली गयीं। घी, तेल, दूध, मसाले सभी कुछ विषैले पदार्थों से मिले होते हैं। लाल फीताशाही में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण जघन्य से जघन्य अपराधों की उपेक्षा कर दी जाती है अथवा कुछ गलत तथ्य प्रकाशित कर कुकृत्यों को सत्कर्मों की संज्ञा देकर समाज में भय, संत्रास का वातावरण पैदा कर दिया जाता है। इस पूरी परिस्थिति का अन्तिम परिणाम यह है कि कोई भी व्यक्ति निर्भय, सुखी तथा शान्त नहीं है। जो थोथा, वह

दूसरे के साथ करता है, वही धोखा दूसरा उसके साथ भी करता है। जिस समय वह दूसरे के साथ मिलावट अन्याय तथा उत्पीड़न के कार्य करता है तो वह इसे अपना अधिकार और बुद्धि चातुर्य्य मानता है किन्तु जब वैसा ही व्यवहार अन्य के द्वारा उसके साथ होता है, तब वह उसे बुरा-भला कहता है। इस प्रकार सर्वत्र त्राहि-त्राहि और बुराई का घोष सुनाई पड़ता है। समाज के इस दुश्चक्र में फँसा हुआ साधनहीन व्यक्ति हतप्रभ एवं किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना वस्तु-स्थिति को अपने भाग्य की विडम्बना मानकर बुरा-भला कह कर मन हलका कर लेता है। समाज में साधन-सम्पन्न व्यक्ति स्वार्थ एवं अपने शरीर-पोषण को ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य मानने के कारण इस दुश्चक्र के साथ समझौता कर लेता है और इसमें सहयोग देकर इससे अपना लाभ कमाने लगता है। इससे भिन्न समाज का प्रबुद्ध वर्ग है जो वस्तु-स्थिति को भली-भाँति समझता है, उसके दूरगामी दुष्परिणाम को देखता है और इसको तोड़ना चाहता है किन्तु सफल नहीं हो पाता।

इस अन्तिम वर्ग में ही राजनेता, समाज-सुधारक तथा विचारक आते हैं। समाज सेवा के ठेकेदार लम्बे-चौड़े भाषण, नारे और प्रदर्शनों से साम्प्रदायिक सद्भावना, राष्ट्रीय एकता और व्यक्ति के बीच विश्वास पैदा करने के अनेक उपाय करते रहते हैं। उन उपायों का क्षणिक-प्रभाव अवश्य होता है। आदर्शों की लम्बी-चौड़ी बातें कहने से कुछ लोग मन्त्र-मुग्ध होकर उनमें श्रद्धा भी रखनें लगते हैं जिसका उपयोग ये लोग जन-कल्याण में न कर अपने राजनीतिक स्वार्थों अर्थात् कुर्सी हथियाने में करते हैं। जब आदर्शों के प्रति ईमानदारी की जगह धोखे की भावना हो तो फिर बबूल के पेड़ पर आम के फल कैसे लग सकते हैं? विचारकों की दृष्टि समस्या के बाह्य धरातल को भेदकर भीतर प्रविष्ट नहीं हो पाती। अतः वे बुद्धि को अनुकूल बनाने वाले उपायों के द्वारा राष्ट्र के व्यक्तियों में एकात्मभाव जगाने का प्रयास करते हैं। जैसे एक सी वेशभूषा, एकसी भाषा, एक से रीति-रिवाज और एक ही रूप में सब लोगों को चाय पिला कर राष्ट्रीय एकता सम्पादित करने का प्रयत्न करते हैं। इन उपायों का कुछ असर तो होता है किन्तु ये उपाय समस्या के मूल आधार की अपेक्षा बाह्य विकार को दूर करने की मानो चेष्टा कर रहे हैं। वृक्ष को हरा-भरा रखने के लिये पत्तों पर पानी छिड़कने जैसा ही यह प्रयत्न है।

इससे भिन्न एक और उपाय दृष्टिगोचर होता है जो सम्भवतः प्रत्येक राष्ट्र और समाज में सदा से चला आया है, वह है—एक ही धर्मग्रन्थ या गुरु अथवा ईश्वर को स्वीकार कर सबका एक आधार मानकर एकात्मभाव को बुद्धि और तर्क के धरातल पर प्रतिष्ठित करना। इस प्रकार के उपायों से समाज में

अपेक्षाकृत कुछ अधिक समय तक सुख-शान्ति का वातावरण रहता है। किन्तु जैसे 'जलद मूल जे सरिता नाहीं। बरस गये पुनि बेग सुखाहीं।' की तरह मूल स्रोत के बिना सारी नैतिकतायें और सदाचार ओढ़े हुए दुशाले मात्र हैं। देश, काल, परिस्थिति के परिणाम से जीर्ण-शीर्ण नैतिकतायें और धर्म के बाह्य आचार-विचार यदि बदले न गये तो समाज में रिक्तता की स्थिति आ जाती है। बुद्धि के वितण्डावाद से धर्म और नीति (Ethics) की परस्पर विरोधी व्याख्यायें समय समय पर होती रही हैं। फलस्वरूप धर्म के नाम पर क्रूसेड-युद्ध, हिन्दू-मुसलिम-संघर्ष, सिया-सुन्नी संघर्ष, आर्यसमाजी-सनातनी विद्वेष तथा अनेक मत-मतान्तरों की प्रचण्ड ज्वालाओं से मानव की सुख-शान्ति सदा ही दग्ध होती रही है। इसीलिये अधिकांश मनीषियों ने धर्म को 'विषैली शराब,' अफीम' अथवा 'जंगलीपन का विश्वास' तथा 'परम्पराओं का प्रवाह' आदि का फतवा दे डाला।

पर्यावरण, परिवेश तथा शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में किये गये परिवर्तनों से यदि सुख-शान्ति का मार्ग प्रशस्त हो सकता तो देश आज इस विपन्न स्थिति में न होता। देश में धर्म-गुरुओं, समाज-सुधारकों, विचारकों तथा राजनेताओं की बाढ़ आई हुई है। फिर भी दारिद्र, दैन्य, दर्प तथा दुराचरण के दुर्भेद्य दुर्ग बनते जा रहे हैं। व्यक्ति के बाह्य रूप का कितना ही परिष्कार करते रहिये, वह इस योग्य नहीं बन सकता कि स्वयं सुख-पूर्वक रहे और दूसरों को सुख दे सके। मनुष्य के पास जो होता है, वही दूसरों को देता है। जिसके जीवन में अशान्ति और उथल-पुथल का साम्राज्य है, वह पड़ोसी को सुखी होता हुआ कैसे देख सकता है और कैसे वह दूसरे को सुखी बनाने में अपना योग दे सकता है? योग-दर्शन कहता है कि समाज को बदलना है तो व्यक्ति को बदलो और व्यक्ति के बाह्य-रूप को बदलने मात्र से व्यक्ति बदलने का नहीं। जब तक उसका अन्तःकरण 'पञ्च पर्व अविद्या' (अविद्या, अस्मिता, रागद्वेष और अभिनिवेश) के मल से निर्मल नहीं होगा, तब तक उसके जीवन में आत्मवत् सर्वभूतेषु' की दृष्टि आ ही नहीं सकती। अपने जैसा दूसरे को समझे बिना राज्य की दण्ड-व्यवस्था के भय से व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के साथ न्याय, समानता तथा सदाचरण का व्यवहार करने के लिए न बाध्य किया जा सकता है और न प्रेरित किया जा सकता है। इसी प्रकार ज्ञान के द्वारा भी व्यक्ति को मिलावट और धोखाधड़ी से विमुख नहीं किया जा सकता। व्यक्ति जब यह अनुभव करने लगे कि जिन दवाओं में मिलावट करके मैं दूसरे के जीवन से खिलवाड़ करता हूं, उसके बदले मुझे चन्द रुपये मिल पाते हैं, किन्तु दूसरी ओर मेरा अपना ही स्वरूप मेरा भाई कितनी यातनायें भोगता है। वह और मैं अलग-अलग नहीं हैं। उसका कष्ट मेरा कष्ट है। ऐसा

अनुभव होने पर कुकर्म से स्वतः विरति हो जायेगी। अनुभूति योग का मार्ग है। दृश्य और द्रष्टा का अलग-अलग अनुभव होने पर जीवन के क्लेश-कर्म स्वतः नष्ट हो जाते हैं। लम्बे-चौड़े उपदेश सुनकर व्यक्ति में उतना परिवर्तन नहीं आता। स्वामी रामतीर्थ के शब्दों में "चाहे संसार भर के सारे बड़े-बड़े उपदेशक आ जायें, ईसा अथवा स्वयं ईश्वर आकर उपदेश करें, परन्तु जब तक मनुष्य स्वयं अपने को उपदेश देने के लिये तत्पर नहीं होगा, तब तक दूसरों के उपदेशों से रंचमात्र भी लाभ न होगा।"

योगारूढ़ मनुष्य ही स्वयं सुख-शान्ति का अनुभव करता है और दूसरों को भी सुखपूर्वक जीने देता है। उपदेशों और ज्ञान से यदि व्यक्ति का आचरण बदल सकता होता तो युधिष्ठिर यह न कहते—

'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः,
जानामि अधर्मं न च मे निवृत्तिः।'

मैं धर्म क्या है और अधर्म क्या है, यह भलीभाँति जानता हूँ किन्तु ज्ञान होने मात्र से मेरी धर्म में प्रवृत्ति तथा अधर्म में निवृत्ति नहीं हो पाती। योग के द्वारा अभ्यास काल में व्यक्ति धर्म के 'सर्वजनहिताय' तथा आत्मनः सुखाय' स्वरूप को समझता हुआ अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि यम, नियमों की साधना द्वारा व्यक्तिनिष्ठ और समाजनिष्ठ सम्बन्धों का परोपकार तथा परस्पर सहयोग की भावना से निर्वाह करता हुआ अपने जीवन की परम परिणिति समाधि सुख तथा कैवल्य-लाभ को प्राप्त करता है। जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद् गीता के छठे अध्याय में योग की अनिवार्यता तथा सब दुखों की अमोघ औषधि बताते हुए कहा है :—

तं विद्याद् दुःखसंयोग
वियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो
योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥
६/२३

दुःख के साथ जो हमारा संयोग है, उससे अलग हो जाने की स्थिति योग नाम से समझनी चाहिये। उस योग का अभ्यास बिना ऊबे और दृढ़ संकल्प से करना चाहिये। मन बाह्य जड़ प्रकृति से हटकर आनन्द के उत्स आत्मा के साथ युक्त हो जायेगा तो मनुष्य की सारी उथल-पुथल और पाप कर्म-प्रवृत्ति दूर हो जायेगी। ब्रह्म-प्राप्ति से उत्पन्न अत्यन्त सुख का अनुभव होने पर वह बड़े से बड़े दुःखों से भी विचलित नहीं होगा और इन्द्रियों को लुभाने वाले रूप, पद, प्रतिष्ठा, धन, वैभव सब फीके लगने लगेंगे :—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं
मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन
गुरुणाऽपि विचाल्यते॥
६/२२

आत्मभाव आने पर व्यक्ति में समत्व भाव अर्थात् सब प्राणियों में अपने को और अपने में सब प्राणियों को देखने की योगदृष्टि आती है—

सर्वभूतस्थमात्मानं
सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा
सर्वत्र समदर्शनः ॥
६/२९

दूसरे की स्थिति में अपने को रखकर तादात्म्य अनुभूति को गीता में आत्मौपम्य दृष्टि कहा गया है। जीवन में जिसे यह दृष्टि मिल गयी, वही सच्चा मनुष्य है और वही दूसरों को उपदेश देने का अधिकारी भी है। हम लोग दूसरों को संवेदना-सन्देश भेजते हैं और सहानुभूति का आये दिन दिखावा करते हैं। उनसे हमारा कितना दुख दूर होता है, यह सभी जानते हैं। दूसरों के दुख दूर करने की सामर्थ्य योगी में होती है। वह अपने निर्माण-चित्तों द्वारा अनेक दुःखियों के दुःख दूर करता है और आत्मदृष्टि सम्पन्न योगी वास्तव में दूसरों के सुख-दुःख के साथ समान अनुभूति (सहानुभूति) प्राप्त करता है। आत्म-दृष्टि और समदृष्टि-सम्पन्न योगी के सारे कर्म अनासक्त और परोपकार की भावना से होते हैं। दूसरों का सुख-दुःख मेरा सुख दुःख है, मेरा सुख दुःख दूसरों का सुख दुःख है—जब यह वृत्ति मन में आ जाती है, तब व्यक्ति अपने सुख-दुःख की परवाह किये बिना दूसरों का दुःख दूर करने में स्वयं दुःख झेलता हुआ भी सुख का अनुभव करता है। तभी वह सच्चा जन-सेवक और समाज-सुधारक हो सकता है। समत्व ही आत्मा का सहज गुण है और प्रकृति के गुण अशान्ति, विषमता और उद्वेग हैं। आत्मा को प्रकृति से अलग कर लेने की प्रक्रिया का नाम ही योग है। दोनों के अलग होने पर राग-द्वेष, शुभ-अशुभ सभी विषयों में योगी स्नेह-शून्य हो जाता है और इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न भोगों को दुःख रूप समझकर भोगों से विमुख होता तथा यदृच्छा लाभ सन्तुष्ट स्थिति को प्राप्त होता है। यही विश्व के साथ, राष्ट्र के साथ तथा समाज के सभी व्यक्तियों के साथ हमारे ऐक्य सम्बन्ध का सही अर्थ है। ऐक्य भावना की अनुभूति का उदाहरण परमहंस रामकृष्ण देव के जीवन में जिस ऊँचाई पर मिलता है, वह आज के विचारकों के लिये अनुकरणीय है। एक बार किसी गाय को पिटता हुआ देखकर उनके मन में दया और करुणा उमड़ पड़ी। फलस्वरूप उस पशु के साथ उनकी सह अनुभूति हो गयी जिससे उनके शरीर पर डंडे के निशान उभर आये। उस पशु का कष्ट उन्होंने अपने शरीर पर ले लिया।

निद्रा और ध्यान

[श्री ओमप्रकाश पालीवाल]

हम सभी नित्य निद्रा देवी की शान्ति दायी गोद में विश्राम करते हैं; लेकिन हम नींद के विषय में कुछ भी नहीं जानते। सभी पूरे जीवन सोते हैं लेकिन नींद का आपको बिलकुल पता नहीं, क्योंकि जब आप नींद में होते हैं तो आप नहीं होते, होते भी हैं तो बेहोशी की स्थिति मे। नींद के बाद प्रातः आप नित्य ताजगी का अनुभव करते हैं। यह ताजगी आपको कहां से प्राप्त होती है यह सब आपकी बेहोशी की हालत में होता है इसलिए आपको केवल अनुभव होता है। आप रात्रो को जितनी गहरी नींद में पहुँचते हैं उतना ही प्रातःअपने को ताजा और नवीन पाते हैं। इससे पता चलता है कि मनुष्य भीतर की दुनिया में निद्रा की हालत में प्रवेश करता है और अज्ञात किसी ताजगी के स्रोत तक जाकर वापस लौट आता है। ठीक इसके विपरीत जो आदमी रात को नहीं सो पाता वह सुबह और भी थका-मांदा होता है, जितना सांझ को थका-मादा नही था। और अगर एक आदमी कुछ दिन तक न सो पाए, तो जीवन दूभर हो जायेगा, क्योंकि जीवन के स्रोत से उसके सम्बन्ध विछिन्न हो जाते हैं। नींद आने न दी जाये, तो व्यक्ति अपने जीवन-स्त्रोत से असम्बन्धित हो जाता है। ऐसी स्थिति में उसके अन्दर नास्तिकता बढ़ती जायेगी जिस मात्रा में नींद कम होती जायेगी। जिन देशों में नींद जितनी कम होगई है, उन देशों में नास्तिकता उतनी ही ज्यादा हो गई है। उदाहरण के लिए अमेरिका की आज यही स्थिति है। जो आदमी जितना गहरा सोता है वह दिन-भर शान्ती से जीता है, और जो गहरा नहीं सोता वह दिन भर बेचैन और परेशान रहता है। बेचैन और परेशान मन ईश्वर और आत्मा को नहीं मानता। पीड़ित अतृप्त, क्रोध और चिन्ता से भरा मन इन्कार करता है कि कोई ईश्वर नहीं है। पश्चिम में जो निरन्तर बढ़ती हुई नास्तिकता है, उसके बुनियाद में नींद का अस्त-व्यस्त हो जाना है। आज न्यूयार्क में कम से कम तीस प्रतिशत लोग है, जो बिना दवा के नहीं सो सकते और वहाँ के मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि अगर यही हालत रही तो भविष्य में आधा अमेरिका पागल हो जायेगा। आज अमेरिकावासियों की यौगिक ध्यान के प्रति उत्सुकता है उसका

कारण है उनकी नींद से उनका सम्बन्ध टूट गया है। वे सोचते हैं, ध्यान से नींद आ जाये नींद के अस्त-व्यस्त हो जाने पर पूरा जीवन बोझिल और उदास हो जाता है। और तनाव से भर जाता है नींद के खो जाने पर पारिवारिक तथा सामाजिक जीवनी भी अस्त-व्यस्त हो जाता है। क्योंकि नींद हमें अचेतन में यहाँ ले जाती है, जहाँ हम आत्मा के भीतर जाकर डूब जाते हैं अधिक समय तक नहीं रात की आठ घण्टे की नींद में स्वस्थ से स्वस्थ आदमी भी सिर्फ दस मिनट के लिए जीवन कुण्डमें डूब पाता है। दस मिनट का ऐसा समय आता है जब आप नींद में पूरी तरह डूब जाते हैं। जब सपना भी नहीं होता।

जब तक स्वप्न चलता है, तब तक नींद पूरी नहीं है तब तक जागने और नींद के बीच में आप भटक रहे हैं। सपना जो है वह अर्द्ध निद्रा, अर्द्ध जाग्रत स्थिति है। नींद एक बहुत बड़ा रहस्य है, जहाँ हमारी कोई पहुँच नहीं है। इसलिए पहुँच नहीं है कि हम ही मिट जाते हैं, तभी नींद आती है। मनुष्य का जितना अहंकार बढ़ता जाता है उतनी उसकी नींद कम होती चली जाती है। क्योंकि अहंकार कहता है कि 'मैं' चौबीस घण्टे कहता है, 'मैं'। नींद असम्भव है 'मैं' के रहते। 'मैं' के रहते हुए परमात्मा से भी मिलना असम्भव है।

निद्रा में भी हम वहीं पहुँचते हैं, जहाँ ध्यान में पहुँचते हैं। लेकिन फर्क इतना ही है कि निद्रा में हम बेहोश होते हैं और ध्यान में जाग्रत होते हैं। अगर कोई निद्रा में भी जाग्रत होकर पहुँच जाए, तो वही हो जायगा जो ध्यान में होता है। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति को क्लोरोफार्म देकर हम किसी बगीचे में पहुँचा दें। बगीचे में फूल होंगे, सुगन्धित हवाएँ होंगी, पक्षी गीत गाते होंगे, लेकिन उस आदमी को कुछ भी पता न होगा उस बेहोश आदमी को बगीचे में घुमाकर वापस लौटा लाएँ। वह आदमी जब होश में आए तब उससे पूछें कि बगीचे की सैर की? तो वह कहेगा कैसा बगीचा? फिर उस आदमी को होश की अवस्थामें बगीचा घुमाया जाय तब वह सब कुछ बता देगा। बस ठीक इसी प्रकार नींद व ध्यान का फर्क है। नींद में भी हम उसी बगीचे में प्रवेश करते हैं, जहाँ ध्यान में प्रवेश किया जाता है। हाँ इतनी बात तो पक्की है कि चाहे कोई आदमी बगीचे में बेहोश गया हो, पर सुबह की ताजी सुगन्धित हवाओं ने उसके शरीर को अवश्य स्पर्श किया होगा सुगन्धित हवा उसके नासापुटों तक अवश्य गई होगी। लेकिन यह सब उसके अनजाने में पूरी हो जाये, तो निद्रा और जागरण में कोई फर्क नहीं रह जाता सिर्फ आँख खुले और बन्द रहने का फर्क रह जाता है। शरीर के विश्राम करने और श्रम करने का फर्क रह जाता है। जो व्यक्ति पूरा जाग गया है, वह पूरा सोता है लेकिन सोने में और नींद में उसकी चेतना

में कोई फर्क नहीं पड़ता। चेतना एक ही होती है सिर्फ शरीर में फर्क पड़ता है।

ध्यान की जो प्रक्रिया है, वह असल में योग निद्रा है, जागते हुए सोने की। जागते हुए नींद में जाने की। शरीर श्वांस और विचार जब पूर्णतः शिथिल हो जाते हैं तब मनुष्य नींद में चला जाता है। ऐसी स्थिति में कुछ लोग ध्यान में न जाकर नींद में चले जाते हैं। ध्यान में जाने की भी यही तैयारी है। शरीर को ढीला छोड़ दें श्वांस को भी शिथिल कर दें तथा विचार भी शान्त हो जाने चाहिए।

विचार प्रवाह के तेजी से चलने की स्थिति में मस्तिष्क में खून को तेजी से दौड़ना पड़ता है। और खून तेजी से सिर में दौड़े तो नींद का आना असम्भव है। नींद के लिए खून की दौड़ सिर की ओर कम होनी चाहिए इसीलिए हम तकिए का प्रयोग करते हैं। अगर तकिया न रखें तो सिर शरीर के सतह पर होता है सतह पर होने से रक्त की गति पूरी होती है, सिर से पैर तक बराबर होती है। सिर ऊँचा रखने से सिर की ओर रक्त चढ़ नहीं पाता, पूरे शरीर में गति करता है, सिर में गति बहुत कम हो जाती है। अगर विचार तेजी से चलेंगे तो भी रक्त की गति सिर की ओर तेजी से होगी। क्योंकि विचार को चलने के लिए भी रक्त का ही वाहन पकड़ना पड़ता है। मस्तिष्क की नसें तेजी से चलने लगती हैं। क्रोध की अवस्था में आपने देखा होगा कि सब नसें फूल जाती हैं, चेहरा लाल पड़ जाता है, आंखें लाल हो जाती हैं। इसका कारण है कि विचार इतने तेजी से दौड़ रहे हैं कि रक्त को बहुत तेजी से दौड़ना पड़ रहा हुआ। नींद के टूटने पर वह अनुभव अवश्य करता है कि बड़ी शान्ति मिली।

गहरी निद्रा की हालत में अर्थात् पूर्ण बेहोशी की हालत में मनुष्य अपनी आत्मा के निकट पहुँचता है उधर ध्यान में होश पूर्वक योगी अपनी अन्तर्आत्मा के निकट पहुँचता है। लेकिन इन दोनों स्थितियों में फर्क न कुछ मालूम होते हुए बहुत बड़ा है। हजारों जन्मों तक निद्रा की हालत में आप अन्तर्आत्मा में प्रवेश करते रहेंगे। लेकिन इससे आपको परमात्मा का कोई पता नहीं चलेगा। लेकिन एक क्षण भी आप अगर गहरे ध्यान में उतर गए तो उस जगह पहुँच जायेंगे जहाँ निद्रा की स्थिति में हजारों बार पहुँचे हैं। लेकिन बेहोश।

गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं, कि जब सब सोते हैं, योगी उस समय जागता है। इसका मतलब यह नहीं कि योगी सोता ही नहीं। बल्कि कहना तो यह चाहिए कि योगी से बढ़िया तो संसार में कोई सोता है नहीं। योगी की स्थिति निद्रा में उसी प्रकार की रहती है जैसी ध्यान काल में रहती है वह नींद में होश पूर्वक ही प्रवेश कर सकता है।

लिए ध्यान और नींद में कोई फरक नहीं रहता।

गहरी निद्रा पूर्ण स्वस्थ और शान्त आदमी को उपलब्ध होती है, सभी को नहीं। पूर्ण स्वस्थ आदमी कोई दस मिनट गहरी शान्ति में डूब जाता है इसके अतिरिक्त अन्य लोगों को कोई पांच मिनट कोई तीन मिनट, कोई दो मिनट, कोई एक मिनट। अधिकतर लोग दो या एक मिनट के लिए ही गहरी निद्रा में डूब पाते हैं। उतने ही एक मिनट पर या दो मिनट पर वे चौबीस घण्टे अपने जीवन को चलाते हैं। उस एक मिनट में जो जीवन केन्द्र से रस मिलता है उससे वह २४ घण्टे जीवन को चला लेते हैं।

ध्यान धीरे-धीरे मनुष्य को जीवन केन्द्र के निकट लाकर एक दिन उसमें ही उसे पूर्णतः डुबो देता है। ध्यानस्थ व्यक्ति जागता है, सोता है, लेकिन सपने नहीं देखता। उसके सपने बिलकुल मिट जाते है। जब सपने मिट जाते हैं तो विचार भी मिट जाते हैं? जागरण में जिसे हम विचार कहते हैं। उसे ही निद्रा में स्वप्न कहते हैं। स्वप्न और विचार में फर्क थोड़ा-सा है। विचार शब्दमय है और स्वप्न चित्रमय। इसलिए रात्रि में स्वप्न में चित्र होते हैं, और दिन में शब्द। चित्र मानव की मौलिक भाषा है— प्राकृतिक। स्वप्न में शब्द चित्र बन जाते हैं, बस इतना फरक है सपने जितने जीवित मालूम पड़ते है, उतना विचार जीवित नहीं मालूम होते। यह फरक उसी प्रकार का है जैसे कि एक आप उपन्यास पढ़ें तो आपको उतना आनन्द नहीं आयेगा जितना उसी उपन्यास की फिल्म देखने में आयेगा। इसका कारण है कि फिल्म चित्रों की भाषा में है और उपन्यास शब्दों की भाषा में है।

शब्द मानव के इतिहास में बहुत बाद के ईजाद किये हुए हैं। सर्व प्रथम चित्रों की ही भाषा ने जन्म लिया। आप कहीं परदेश चले जायें जहां की भाषा आपको नहीं आती है। और पानी पीना हो, तो आप दोनों हाथ मुँह के पास ले जाकर चित्र बनाएँगे कि मुझे पानी पीना है। जब शब्द नहीं है तब चित्र की जरूरत पड़ती है। शब्दों की भाषा तो अलग अलग हो सकती है लेकिन चित्रों की भाषा प्रत्येक प्राणी की एक है।

स्वप्न के समाप्त होने पर विचार भी समाप्त हो जाते है। और जिस दिन विचार समाप्त होते हैं उसी दिन स्वप्न भी समाप्त हो जाते हैं। अगर आपका दिन विचारों से खाली हो जाये तो निश्चित रूप से रात स्वप्न से खाली हो जायेगी। सपने आपको सोने नहीं देते हैं और विचार आपको जगने नहीं देते। अगर स्वप्न पूर्णतः नष्ट हो जायें तो नींद पूरी हो जायेगी। और अगर विचार खो जायें तो जागरण पूरा हो जायेगा।

और अगर जागरण पूरा हो जाए और निद्रा स्वांस भी तेज हो जाती है, काम वासना के जाग्रित होने पर भी यही होता है। स्वांस तेज हो जाती है रक्त की भी गति एकदम तेज हो जायेगी, पसीना शरीर में आने लगेगा क्योंकि उस अवस्था में विचार इतने तेज चलेंगे जिसके फलस्वरूप मस्तिष्क के सारे स्नायु तेज रक्त फेंकने लगते हैं। इसलिए पूर्ण नींद लेने के लिए जिसमें आप आत्मा में डूबकर ताजे होकर वापस लौटते हैं। शरीर को पूर्ण शिथिल छोड़ दें, स्वांस को शिथिल छोड़ दें, स्वांस को शिथिल छोड़ दें और विचार भी शिथिल छोड़कर दें।

आज के संघर्षमय जीवन में मनुष्य समय नहीं निकाल पाता ऐसे व्यक्ति अगर योग निद्रा का अवलम्ब लें तो ध्यान स्थिति में बहुत कुछ प्रगति सम्भव है।

❀ ज्योति अभिनन्दन तुम्हारा ❀

यो अग्नि तन्वो दमे देवं मर्तः सपर्यति तस्मा इद्दीदयत् वसु।

ऋक् ८. ४४।१५

[भावानुवाद—श्री सत्यकाम विद्यालंकार]

जो अन्तर के गृह-मन्दिर में, पावन जोत जगाये।
अग्नि शिखा सम तेजस्वी हो, विश्व-ज्योति बन जाये।
अन्तर्यामी परम देवता, के चरणों में जीवन।
अर्पित करता जन जो वह ही, प्रभु का दर्शन पाये।

मन

कारण बन्धन मोक्ष का, मन ही एक अधार।
विषय बीच फँस गिरत हैं, ध्यान से मिटत विकार॥
ध्यान से मिटत विकार, व्यक्ति अन्तरमुख होकर।
कौतुक लखत अपार जगत, से न्यारे रह कर॥
कहत "सजीवन" योग छत्र, करिए सब धारण।
मन होवे एकाग्र मिटैं, बन्धन का कारण॥

—श्री राम सजीवनसिंह

सहजावस्था और योगनिद्रा

[श्रीमती सरिता भारद्वाज एम० ए० हिन्दी संस्कृत)

श्रीकृष्ण के प्रिय सखा उद्धव गोपियों को योग के ज्ञान का सन्देश लेकर पहुँचे तो प्रेम-योग परायणा गोपियों ने उनके ज्ञान की धज्जियाँ उड़ादी और कहा– हे ऊधो, हम तो अबला हैं। हमें सीधा-साधा सरल मार्ग बता सको तो बताओ वरना हमारे मन में अलख अरेख, निर्गुण ब्रह्म के अनेक-मन-मोहन हृदय में बसाओ ना। क्योंकि 'एक मन-मोहन तो बसि के उजारो'। उस ब्रजचन्द श्रीकृष्णचन्द्र की माधुरी मूरति की मनोमुग्धकारी दिव्य छटा एक पल को भी हमारी आँखों से ओझल नहीं हो पाती। उठते-बैठते, सोते-जागते, गोदोहन करते उसी की बंशी का स्वर, उसी की माखन लीला, उसी की रास लीला आँखों के आगे होती रहती है। न यह तन अपने वश में रहा और न यह मन अपने वश में। फिर बताओ कौन साधना करे? क्या साधना करे? अन्त में वश में रहा और न यह मन अपने वश में। फिर बताओ कौन साधना करे? क्या साधना करे? अन्त में इन प्रभु ऊधो को सतर्क करती हैं कि अपनी ज्ञान की पोथी जल्दी समेट लो अन्यथा प्रेमाग्नि की ज्वाला से तुम्हारे ज्ञान की गठरी जलकर राख हो जायेगी। उपदेशक ऊधौं को उल्टा उपदेश देती है—

'ऊधौं सहज समाधि भली।'

सहजावस्था या सहज समाधि प्रेमयोग' की सबसे ऊँची अवस्था है। जब रोम-रोम में, स्वास-प्रश्वास में इष्ट का नाम, रूप और शक्ति लबालब भर जाय; प्रिय को देखे बिना एक क्षण चैन न रहे। जैसे मछली पानी से बाहर छटपटाती है, एक क्षण भी उसका वियोग सहन नहीं कर पाती; जैसे गाय अपने सद्य प्रसूत वत्स को देखने के लिए वन से दौड़ने को आतुर है, जैसे बिना पंखों वाले बच्चों की देखभाल करने के लिए चिड़िया भागी-भागी आती है यह अवस्था जीवन में आ जाय तब जीवन धन्य और कृतकृत्य हो जाता है। सन्त शिरोमणि तुलसी इस अवस्था का वर्णन करते हैं—

'मम गुण गावत पुलक शरीरा।
गद्गद् गिरा नयन बह नीरा।

यह अवस्था श्रद्धा विश्वास और अपने इष्ट में निस्वार्थ प्रीति करने से इष्ट की

कृपा से स्वयं आ जाती है। गोस्वामी तुलसीदासजी इस अवस्था का हेतु साधन को नहीं मानते किन्तु सिद्धयोग को ही मानते हैं—

यह फल साधन से नहिं होई।
तुम्हरी कृपा पाव कोउ कोऊ॥

प्रभु की कृपा सहज रूप से हो जाती है। उसके लिए जाति, कुल, ज्ञान आदि का बड़प्पन आवश्यक नहीं है। सहज कृपा का अधिकारी व्यक्ति कब होता है—इसका निर्देश गोस्वामीजी करते हैं—

मन क्रम बचन छाँड़ि कुटिलाई।
भजत कृपा करहहिं रघुराई॥

मन वाणी कर्म में सत्य, शान्ति तथा माधुर्य और प्रेम होने पर साधक सहज सुख का अधिकारी बन जाता है। उस अवस्था के साधक के योग-क्षेम का निर्वाह भगवान स्वयं किया करते हैं। कबीर के शब्दों में 'पीछे-पीछे हरि फिरैं कहत कबीर कबीर' भक्त के पीछे-पीछे भगवान घूमते हैं और उसके कल्याण के लिए उससे पूछते हैं—वर माँग। क्योंकि चाहे भक्त की कोई इच्छा न हो परन्तु;

'मम दरशन फल परम अनूपा।
जीव पाव निज सहज सरूपा॥

जब लोक में कोई किसी की मजबूरी नहीं रखना चाहता फिर भगवान किसी के साधन और जप-तप का पुण्य क्यों लेने लगे। उसे कई गुना कर साधक को लौटाना चाहते हैं।

जैसे को तैसा मिलता है। कुटिलता से दुनिया को ठगकर पेट भले ही भर लें प्रेम का प्याला पीने की घड़ी जीवन में नहीं आ सकती। सहज और सरल हुए बिना सहज की प्राप्ति होना असम्भव है। तुलसीदासजी कहते हैं—

जग से रह छत्तीस (३६) है,
राम चरण छः तीन (६३)'

तभी रामजी की कृपा के अधिकारी हो सकते हो। दुनियादार व्यक्ति के लिए सहजावस्था प्राप्त करना उतना ही कठिन है जितना कठिन मच्छर को चन्द्रलोक की यात्रा करना है। हठयोग प्रदीपिका में कहा—

दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्त्वदर्शनम।
दुर्लभा सहजावस्था सद्गुरोः करुणां बिना॥

सद्गुरु की कृपा (शक्तिपात) बिना विषयों से छुटकारा होकर तत्त्व के दर्शन होना और सहजावस्था की उपलब्धि होना बड़ा कठिन है। समर्थ गुरुदेव की कृपा हो जाय तो वह अनन्त रूप माधुरी अन्तस में इतनी भर जाती है कि बन्द नेत्रों से और खुले नेत्रों से भी भीतर का रूप बाहर दिखाई पड़ता है। 'जित देखों तित श्याममयी है'—की दृष्टि गोपियों को श्रीकृष्ण द्वारा हार्द, स्पर्श, हठ-दीक्षा के द्वारा शक्तिपात करने के कारण प्राप्ति हुई थी। फिर तो गोपियों की यह दशा

हो गई कि उनकी देह बुद्धि नष्ट हो गई और प्रतिक्षण उनमें आत्मभाव का समुद्र हिलोरें लेने लगा। नारायण कवि ने उनकी प्रेमदिवानी अवस्था का सुन्दर चित्रण इस प्रकार किया है :

मोहन बसि गयो मेरे मन में ॥
लोक लाज कुल कानि छूटि गई,
याकी नेह लगन में।
जित देखों तित ही वह देखे,
घर बाहिर आंगन में।
अंग अंग प्रति रोम-रोम में,
छाय रह्यो तन मन में।
चपल नैन भृकुटी वर बांकी,
ठाड्यो सघन लतन में।
नारायण बिन मोल बिकी मैं,
याकी नेह हसन में॥

मीरा प्रेम दिवानी होकर दर्द की मारी चारों ओर घूमती फिरती थी। हरि प्रेम के प्याले की मस्ती का आनन्द जिसे मिल गया उसके जीवन में किसी बात की कमी नहीं रहती। मस्तमौला कबीर ने इस प्रेम मदिरा का आनन्द लिया था। प्रेम-मदिरा की खूबी कबीर के शब्दों में देखिये : —

हरि-रस पीया जानिये,
कबहुँ न जाहि खुमार।
मैमन्ता घूमत फिरैं,
नाही तन की सार॥

'सुरति' और 'सुमिरन' की परिपक्वावस्था है। वस्तुतः एक योगी ही सही ढंग से सोना जानता है। संसारी लोग सोने के समय भी विषयों का चिन्तन नहीं छोड़ पाते। अतः क्लेशयुक्त, थके एवं खिन्न मन से सोकर उठते हैं जिससे उनका कर्माशय उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। योगदर्शन के सिद्धान्तानुसार 'सति मूले तद्विपाकोजात्यायुर्भोगाः' अर्थात् कर्माशय के परिणामस्वरूप जन्म, योनि, आयु और सुखःदुःख के भोग का चक्र बढ़ता रहता है। योगारूढ़ साधक अहर्निश एक तत्त्व का चिन्तन, मनन, एवं स्मरण करते-करते तदाकाराकारित चित्तवृत्ति से नित्य मुक्त हो जाता है। श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को सहजावस्था प्राप्ति का उपाय बताते हैं : —

सहजावस्था का उपाय—

मन्मना भव, मद्भक्तो,
मद् याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैव,
मात्मानं मत्परायणः॥
९/३४

अर्थात् हे अर्जुन मुझ में मन लगा, मेरा भक्त बन, मेरी पूजा कर मुझे प्रणाम कर, इस प्रकार मेरे परायण होकर तू मुझको ही पावेगा। क्योंकि—

यो मां पश्यति सर्वत्र
सर्वं च मयि पश्यति॥
तस्याहं न प्रणश्यामि
स च मे न प्रणश्यति॥
६/३०

जो मुझे सब जगह देखता है और सब वस्तुओं को मुझमें देखता है वह मेरी दृष्टि से कभी ओझल नहीं होता और न मैं उससे कभी दूर होता हूं।

संसार के जीवन संग्राम को जीतने का उपाय सहजयोग से बढ़कर दूसरा साधन नहीं। श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं :—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु
मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्मा
मेवैष्यस्य संशयम् ॥

८/७

दुनियादारी के सारे व्यवहार, ईश्वर में मन बुद्धि समर्पित कर (आदर पूर्वक) करो। हर क्षण प्रभु का स्मरण करते हुए कार्य करने से भक्त प्रभु की कृपा का सदा अधिकारी बना रहता है और ईश्वर उसके कार्य स्वयं करते देखे गये है।

जब 'नागरि का चित गागरि में' रीति से प्रतिक्षण प्रभु का स्मरण चलने लगता है तो होश में बेहोशी और बेहोशी में होश तथा जागृत में सुषुप्ति और सुषुप्ति में जाग्रत की अवस्था बनने लगती है। सहजोबाई कहती है -

सोना तो सबसे भला,
जो कोई जाने सोय।
अन्तर्लौ लागी रहै,
सहजौ सोवन होय॥

सहजावस्था का फल

जब स्वाध्याय और सत्संग के 'तीव्र संवेग' से चित्तवृत्ति एकतत्व के अभ्यास में परिपक्व हो जायेगी तो सोने में ही जप सत्संग चलेगा और सही अर्थों में 'निद्रा समाधि स्थिति' बन जायेगी। सोते-सोते भी चित्त में आह्लाद, बुद्धि में वैशारद्य तथा रोम-रोम में पुलक की अनुभूति होगी। और सोकर उठने पर मन प्रसाद युक्त होगा। सहजोबाई कहती है कि यह अवस्था तभी आती है जबकि—

प्रेम दिवाने ह्वै रहे,
प्रियतम के रंग मांहि।
सहजो सुधि बुधि सब गई,
तन की हूँ सुधि नाहि।'

अमनस्क योग में कहा गया है कि आठ दिन-रात सहजावस्था में लीन रहने पर योगी क्षुधा, पिपासा आदि से पीड़ित नहीं होता और नीरोग हो जाता है।

अष्ट रात्र लयेनापि भवेद्
योगी निरामयः।
क्षुत पिपासादि भावैश्च
सहजोस्थोन पीड्यते ॥

इस प्रकार उत्तरोत्तर अभ्यास से सहजावस्था में स्थित योगी को प्रकृति के लिंग परमाणुओं पर वशीकार हो जाता है और अणिमादि सिद्धियां उसका स्वागत करती हुई चौबीस वर्षों के अभ्यास प्र वह 'निज इच्छा निर्मित तनु' की सामर्थ्य वाला हो जाता है। शास्त्रकारों का वचन है कि 'अद्वैतबुद्धिः सहजस्थितस्य।' सहजावस्था में अद्वैतबुद्धि हो जाती है। क्योंकि यह जो कुछ चराचर जगत है यह सब मन का दृश्य है। मन का विलय हो जाने पर अद्वैत भाव हो जाता है। अतः योगी को रात दिन सहज-तत्त्व में शयन करना चाहिए।

सिद्धमार्ग अथवा नाथ-पंथ

[श्री सुरेन्द्रबहादुर]

जिज्ञासु—

महाराजजी ! क्या आप लोग जो साधना करते हैं उसे योग की संज्ञा दी जा सकती है ?

सिद्ध—

हाँ, वत्स । सिद्ध मार्ग अथवा नाथ-मार्ग की साधना को हठयोग भी कहते हैं ।

जिज्ञासु—

इस योग के पूर्व 'हठ' शब्द क्यों लगा है ? इसका तात्पर्य क्या होता है ? कृपया सरल शब्दों में मुझे समझा दीजिए ।

सिद्ध —

वत्स ! तुम्हारा यह प्रश्न बड़ा ही उचित एवं सामयिक है । इस प्रश्न का उत्तर मैं तुम्हें बतलाता हूँ, ध्यान देकर सुनो । 'ह' का अर्थ होता है चन्द्र तथा 'ठ' का अर्थ होता है सूर्य और 'योग' का अर्थ होता है मिल जाना या एकीकरण । अतः 'ह' कार और 'ठ' कार का योग कहने का अर्थ चन्द्र और सूर्य का मिलन अथवा एकीकरण है ।

जिज्ञासु—

महाराजजी ! क्या चन्द्र और सूर्य का कोई लाक्षणिक अर्थ होता है ?

सिद्ध —

हाँ, वत्स । इस मार्ग में चन्द्र और सूर्य का अर्थ अभिधा में नहीं वरन् लक्षणा में ही लिया जाता है । चन्द्र से इडा तथा सूर्य से पिंगला नाड़ी का संकेत होता है । इडा नाड़ी से अपान और पिंगला नाड़ी से प्राण वायु का संचार होता है । जब हम श्वास बाहर फेंकते हैं तो प्राण की ऊर्ध्व गति पिंगला मार्ग से होती है । जीव अविद्या से ग्रस्त होकर श्वास-प्रश्वास के अधीन रहता है जिसके कारण वह निरन्तर इडा (चन्द्र) और पिंगला (सूर्य) नामक बाएँ व दाएँ मार्ग में संचरण करता रहता है । इन्हीं दोनों शक्तियों के परस्पर विरुद्ध दिशाओं में संचरण करने के कारण यह जीव बृद्धावस्था में है । किन्तु जब इन दोनों शक्तियों का मिलन या एकीकरण होता है, अथवा जब ये दोनों शक्तियाँ साम्यावस्था में आती हैं तब जीव का मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है । इन दोनों शक्तियों की समावस्था प्रलय है और वैषम्यावस्था सृष्टि है । जब इन दोनों शक्तियों का साम्य बिगड़ता है तब सृष्टि, दृश्य, द्वैत और वैषम्य का प्रादुर्भाव होता है । किन्तु इन दोनों शक्तियों की

साम्यावस्था में द्वन्द्व, वैषम्य आदि का लोप हो जाता है। इन्हीं दोनों शक्तियों को कहीं-कहीं शिव और शक्ति के नाम से तथा कहीं-कहीं पुरुष और प्रकृति के नाम से पुकारा जाता है। जीवदेह में ये दोनों शक्तियाँ प्राण और अपान के रूप में प्रकट होती हैं। दोनों एक-दूसरे का आकर्षण करते हैं फिर भी दोनों एक-दूसरे से मिल नहीं पाते। प्राण का आकर्षण अपान करता है और अपान का आकर्षण प्राण करता है किन्तु जब प्राण सक्रिय रहता है तब अपान निष्क्रिय रहता है और जब अपान सक्रिय रहता है तब प्राण निष्क्रिय रहता है। इसी कारण ये दोनों शक्तियाँ आपस में मिल नहीं पातीं। यदि किसी प्रकार निष्क्रिय प्राण को प्रबुद्ध करके अथवा सक्रिय बनाकर सक्रिय अपान के साथ मिलाया जा सके अथवा निष्क्रिय अपान को सक्रिय बनाकर सक्रिय प्राण के साथ मिलाया जा सके तो दोनों साम्यावस्था में आ सकते हैं। स्वाभाविक निश्वास को पूरक और प्रश्वास को रेचक कहते हैं। दोनों के समीकरण को कुम्भक कहते हैं। साधारण मनुष्य में प्राण और अपान की क्रियाएँ स्वाभाविक रूप से होती रहती हैं अतः उसमें केवल इडा और पिंगला के मार्ग ही क्रियाशील रहते हैं। इडा और पिंगला नाड़ियों के बीच में सुषुम्ना नाम की नाड़ी अवस्थित है। जब प्राण और अपान साम्यावस्था में होते हैं तब सुषुम्ना का द्वार खुल जाता है। प्राण-अपान की समता होने पर इडा और पिंगला नाड़ियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं, कुम्भक बन जाता है और सुषुम्ना मार्ग को ब्रह्म नाड़ी या मोक्ष-मार्ग या मध्य-मार्ग कहते हैं। इसी को शून्य पथ भी कहते हैं। अतः जब तक चन्द्र और सूर्य का अथवा प्रकृति और पुरुष का अथवा शक्ति और शिव का मिलन नहीं होगा तब तक शून्य पथ के खुले बिना शून्य में वास्तविक स्थिति हो नहीं सकती।

जिज्ञासु —

महाराजजी, बीच में ही टोकने की मेरी धृष्टता को क्षमा करते हुए कृपया यह बतलाइए कि शून्य किसे कहते हैं? शून्य में स्थित होने का तात्पर्य क्या है?

सिद्ध—

शून्य एक सापेक्ष पद है, जैसे शून्य, अतिशून्य, महाशून्य इत्यादि। किन्तु वास्तविक शून्य निरपेक्ष होता है। इसी को निर्वाण भी कहते हैं। शुद्ध शून्यावस्था में क्लेश—कर्माशय, वासना, कामना, तृष्णा आदि का अत्यन्ताभाव हो जाता है। यह अवस्था उपर्युक्त वर्णित प्रकृति और पुरुष के प्रगाढ़ आलिंगन का ही परिणाम है।

जिज्ञासु—

महाराजजी, विशुद्ध शून्यावस्था तथा उसके पूर्व की प्रक्रिया कृपया संक्षेप में बताने का कष्ट कीजिये।

सिद्ध—

वत्स, निर्वाण के पूर्व की प्रक्रिया तथा निर्वाण का हम क्रमशः संक्षेप में वर्णन करते हैं एकाग्रचित्त से सुनो। मूलाधार में (गुदा मार्ग से चार अंगुल ऊपर) कुण्डलिनी नामक शक्ति साढ़े तीन लपेटों में वलयाकार होकर प्रसुप्तावस्था में विद्यमान रहती है। है। इडा और पिंगला के संघर्ष के फलस्वरूप प्राण और अपान जब साम्यावस्था में आते हैं तो कुण्डलिनी जाग्रत होकर ऊपर को उठती है और सुषुम्ना मार्ग से (मध्यमार्ग अथवा सरल मार्ग से) ऊपर की ओर संचरित होने लगती है। उस समय शरीर के विभिन्न भागों में बिखरी हुयी सारी शक्तियाँ चारों ओर से सिमटकर सुषुम्णा द्वार से होकर उर्ध्वगति में हो जाती हैं। दूसरे शब्दों में, इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जिस समय कुण्डलिनी शक्ति की सुषुम्णा मार्ग में उर्ध्वगति होती है उस समय शरीर के सारे प्राण खिचकर उसी धारा में प्रवाहित होने लगते हैं। यहां यह बात समझ लेना अनावश्यक न होगा कि इन्हीं शक्तियों के द्वारा जगत के सारे पदार्थों का निर्माण हुआ है। अतः जब कुण्डलिनी चक्रों से होकर गुजरती है तो उन शक्तियों के द्वारा सृष्टि रचना का रहस्य क्रमशः समझ में आता जाता है और प्रत्येक चक्र से आगे बढ़ने पर निचले चक्रों की सृष्टि का संहार भी अनुभूत होता जाता है और महाशून्य का प्रसार बढ़ता जाता है। उस समय यह जगत इन्द्रजाल के रूप में भासित होने लगता है। इस प्रकार क्रमशः लोक-लोकान्तरों का विनाश करती हुयी कुण्डलिनी शक्ति 'सोऽहम्' का भयंकर नाद करती हुई षट्चक्रों का भेदन करके आज्ञाचक्र के ऊपर पहुँच जाती है। तत्पश्चात् उसे एक अत्यन्त सूक्ष्म तथा बीहड़ मार्ग से होकर चेतन शक्ति के रूप में ऊपर की ओर जाना पड़ता है। उस समय कुण्डलिनी रूपा शक्ति सहस्रारस्थ शिव से मिलने के लिये उतावली होकर आगे को बढ़ती है और जीव उसके आकर्षण से शक्तिमाता की गोद में चिपका हुआ आगे को स्वतः बढ़ता जाता है। सहस्रार में एक महाबिन्दु है उसी में शिव और शक्ति का मिलन होता है। इस मिलन के फलस्वरूप एक अनिर्वचनीय आनन्द का प्रस्फुरण होता है और जीव उस आनन्द का अनुभव करता है। जब महाबिन्दु में शिव और शक्ति नामक दोनों बिन्दुओं का मिलन होता है तो उस मिलन की प्रारम्भिक अवस्था में दोनों बिन्दु बने रहते हैं किन्तु प्रगाढ़ आलिंगन होने पर दोनों बिन्दु एक महाबिन्दु में परिणत हो जाते हैं। यह महाबिन्दु अद्वय है, अखण्ड है और परमानन्द स्वरूप है। योगी इसी आनन्द की रसधार से निरन्तर प्लावित होता रहता है। इसी अवस्था को योगी लोग विभिन्न नामों से पुकारते हैं, जैसे, निर्वाण, कैवल्य, परमानन्द, परमपद, अक्षयपद इत्यादि।

जिज्ञासु —

महाराजजी, शास्त्रों में लिखा है 'ऋते-ज्ञानान्नमुक्तिः' अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती। इसी प्रमाण को लेकर ज्ञानवादियों का कहना है कि शास्त्रों के अनुसार आत्म-चिन्तन करने से स्वतः आत्मज्ञान प्राप्त होकर मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। फिर इस कष्ट-साध्य योग की क्या उपादेयता है ?

सिद्ध —

'वत्स, सर्वसिद्धान्तसंग्रह' में श्री शंकराचार्य ने यह स्वीकार किया है कि केवलमात्र ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। ज्ञान और योग दोनों मुक्ति के साधन हैं। ज्ञान से अविद्या का नाश अवश्य होता है किन्तु इससे आत्मा की अपरोक्ष अनुभूति नहीं होती। इसके लिए देह-शुद्धि आवश्यक है अन्यथा इसके अभाव में देह दोष के कारण ज्ञानी का मन भी भ्रमित हो जाना सम्भाव्य है। जिस प्रकार त्वचा के दोष के कारण किसी वस्तु का स्पर्श होने पर भी स्पर्श-ज्ञान नहीं होता उसी प्रकार आत्मा का भली-भांति ज्ञान होने पर भी उसकी अपरोक्षानुभूति नहीं होती। अतः इसके लिए योगाभ्यास आवश्यक है। दीर्घकाल तक योग का अभ्यास करते रहने से सारी चित्त-वृत्तियों का निरोध हो जाता है और परिणामतः आत्मा अपने स्वरूप में में स्थित हो जाता है।

जिज्ञासु —

महाराजजी, देह-शुद्धि से आपका क्या तात्पर्य है ? और यह आवश्यक क्यों है ?

सिद्ध —

देह-शुद्धि को पिण्डसिद्धि भी कहते हैं। योगमार्ग में पिण्ड सिद्धि का स्थान बड़ा ही महत्वपूर्ण है। पिण्डसिद्धि के अभाव में ज्ञानी का प्रारब्ध पर कोई नियन्त्रण नहीं रहता, जिसके कारण वह प्रारब्ध की डोर से बँधा हुआ कठपुतली की भांति प्रकृति के इशारे पर नाचने को बाध्य रहता है। 'पंचदशी' के प्रणेता विद्यारण्य स्वामी ने भी प्रारब्ध को तत्त्वज्ञान से अधिक प्रबल कहा है। उनका कहना है:—

'प्रारब्धं कर्म यथा
तत्त्वज्ञानात् प्रबल।
'तस्मादपि कर्मणो
योगाभ्यासा प्रबलोऽस्तु।'

अर्थात्, तत्त्वज्ञान से प्रारब्ध प्रबल है और प्रारब्ध से योगाभ्यास प्रबल है। पिण्ड-सिद्धि के कारण योगी प्रारब्ध को भी जीत लेता है और वह महाकाल की सीमा के बाहर हो जाता है। उसके पतन की सम्भावना कभी नहीं हो सकती किन्तु ज्ञानी के पतन की सम्भावना रहती है। काम, क्रोध आदि विकारों से ग्रस्त जीव केवल ज्ञान द्वारा मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। 'योगबीज' नामक ग्रन्थ में लिखा है: —

''ज्ञाननिष्ठो विरक्तोऽपि
धर्मज्ञो विजितेन्द्रियः।

बिना योगेन देवोऽपि
न मोक्षं लभते प्रिये ॥"

अर्थात्, ज्ञाननिष्ठ, विरक्त, धर्मज्ञ, इन्द्रियों को जीत लेने वाला और देवता भी बिना योग के मोक्ष-लाभ नहीं कर सकते।

जिज्ञासु—

महाराजजी, ज्ञानी को आत्म-ज्ञान होने के अनन्तर भला पतन की सम्भावना कैसे हो सकती है?

सिद्ध—

जिस प्रकार सौभरि मुनि मछलियों की क्रीड़ा देखकर आत्मज्ञान से च्युत होकर मान्धाता की कन्याओं के साथ विलास-मग्न हो गये; जिस प्रकार जड़भरत हिरन के बच्चे में आसक्त होकर पुनर्जन्म के भागी बने। इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण शास्त्रों में भरे पड़े हैं। किन्तु किसी सिद्ध योगी के पतन का एक भी उदाहरण देखने को नहीं मिलता। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है :—

'ज्ञान कै पन्थ कृपान कै धारा।
परत खगेश होइ नहिं बारा॥

श्वेताम्बर उपनिषद ने भी ज्ञान मार्ग की तुलना छुरे की धार से की है।

जिज्ञासु—

महाराजजी, हमने सुना है कि योग मार्ग में योगी को अणिमा, लघिमा आदि सिद्धियां प्राप्त होती हैं जिनके कारण योगी के भी पतन की सम्भावना रहती है। इस बारे में आपका क्या विचार है?

सिद्ध—

योग मार्ग में आठ सिद्धियां अथवा ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। ये सिद्धियां योगी के लिए बाधक नहीं वरन् सहायक होती हैं :—

"अणिमाद्यष्टकं तस्य
योगसिद्धस्य जायते।
तेन मुक्ति विरोधो न
शिवस्येव यथा तथा॥"

❀ यह शरीर ❀

यदि शरीर ही नहीं हुआ तो हृदय और बुद्धि रहेंगे कहाँ? इस शरीर के द्वारा ही सब पुरुषार्थ प्राप्त कर लेते हैं। निराकार आत्मा साकार बनकर ही सब कुछ कर सकती है। यदि बाहर का काँच न हो तो अन्दर की ज्योति की प्रभा उतनी साफ नहीं पड़ेगी। जब बाहर का काँच सुन्दर और स्वच्छ होगा तभी दीपक का प्रकाश अच्छा पड़ेगा। हमें अपने शरीर में से ही आत्मा-रूपी सूर्य के प्रकाश को बाहर डालना है। यह शरीर जितना नीरोग, सुन्दर, स्वच्छ और पवित्र रहेगा उतना ही आत्मा का प्रकाश अच्छी तरह से होगा।

—श्रुतिसार

नरक के दारुण दुःख

[द्वारा श्री चन्द्रभान गुप्ता सहायक अभियन्ता रुड़की]

—पूर्व प्रकाशित से आगे—

कहीं पर प्राणियों पर वज्रपात होता है, कहीं अत्यन्त दारुण उल्काग्नि का पात होता है और किसी जगह अंगारों की एकदम वर्षा होती है जिससे शरीर में भस्मीभूत होने का कष्ट होता है। प्राणी मार्ग में धूल से व्याप्त होकर रुदन करते हैं और भयानक मेघों से भयभीत होते हैं। पापात्मा प्राणी यमपुर के मार्ग में चारो ओर से तीखे शस्त्रों की वृष्टि से भेदित होते हुए और महाखारी समुद्र की लहरों से सिंचित होकर जाया करते हैं। मार्ग में बहुत रूखी व कठोर वायु लगती है, जिससे शुष्क और सुकड़े हुए हो जाते हैं। इस रीति से मार्ग बहुत ही अधिक भयंकर होता है जिसमें न कुछ चबेना है और न कोई आधार ही। उसमें पीने के लिये जल भी प्राप्त नहीं होता है।

पापी जीव यमदूतों के द्वारा पकड़े हुये अकेले पराधीन विवश मित्र तथा बन्धु बान्धवों से विमुक्त होकर अपने कुकर्मों पर चिन्ता करते हुये और बारम्बार रोते हुये मार्ग में जाया करते हैं। पापी प्राणी जब प्रेत होते हैं तो वस्त्र रहित उनका गला होता है, ओठ और तालू सूखे हुए हैं, सौम्यता से रहित भयभीत परम सन्तप्त और भूख से परम क्लेशित होकर यमपुरी की यात्रा करते हैं। उन पापियों में कुछ सांकलों से बंधे हुये हैं तो कुछ ऊपर को पैर किये हुये हैं। उन्हें बलवान यमदूत बलपूर्वक खींच कर ले जाते हैं। पापी जीवों में कुछ उत्तान होकर मस्तक पर अंकुश से विदीर्ण होते हुये परम दुःखित हैं तो कोई हृदय से नीचे मुख किये हुये घिसटे चले जाते हैं; कुछ काल की पाशो से बंधी हुई रस्सी से खिंचे हुये ले जाये जाते हैं। कोई अत्यन्त क्लेशित हैं जो कि कष्टाकीर्ण तथा अंगारपूर्वक मार्ग से ले जाये जाते हैं। कुछ पापियों को यमदूतों द्वारा मार्ग में भुजाओं को बांधकर ले जाया जाता है। कोई अंतड़ियों से खूब कसकर बंधे हुये उदर से पीड़ित होकर ले जाता है, कुछ के हाथों में कीलें ठुकी हुई रहा करती है। कोई कोई पापात्मा गर्दन के फांसे से खींचे जाते हैं। कोई जिह्वाकुंच प्रवेश वाली रस्सी से खींचे हुये परम दुःखित होकर यमपुरी के मार्ग में जाते हैं। कुछ लोग नासिका के भेदन वाली रस्सी के द्वारा तथा कुछ कपोल और होंठों को भेदन वाली रस्सी के द्वारा मार्ग में यम के दूतों से खींचे हुये होकर जाया करते हैं।

उन पापात्माओं में कुछ आगे के हाथ पैरों से छिन्न होते हैं कोई कान ओठ और

नाक से छिन्न तथा कुछ अण्डकोश एवं लिंग के छिन्न और कुछ अंगों के जोड़ों से छिन्न-भिन्न होकर ले जाये जाते हैं। यमदूतों के द्वारा अत्यन्त त्रास को प्राप्त पापात्मा यमपुरी के मार्ग में असकों से विधमान होकर बाणों से विदीर्ण निराश्रय और इधर-उधर को रोकर दौड़ते भागते हुए ले जाये जाते हैं। कुछ पर सुन्दर से तथा लोहे के डण्डों से बारम्बार प्रहार किये जाते हैं और वे घोर परम सन्तप्त सूर्य के समान कांटों से पीड़ित होते हैं। वहाँ मार्ग में कुछ पापी भिन्दिपाल अस्त्रों से भेदित किये जाते हैं। विष्टा के कीड़ों से, जिनसे रुधिर और मवाद टपकता रहता है, व कुछ पापात्मा नोचे जाते हैं जिनके कष्ट से विवश होते हुये यमपुरी को जाया करते हैं। यमपुर के मार्ग में उन पापियों को खाने का अन्न तथा पीने जल नहीं मिलता है इसलिये वे अत्यन्त व्याकुल होकर अन्न की और जल की याचना करते हुये तथा शीताधिक्य से बेचैन अग्नि ताप को मांगते हुए यमदूतों द्वारा ले जाये जाते हैं। जिन्होंने संसार में कभी कुछ दान नहीं दिया, वे दानहीन मनुष्य ही ऐसी याचना भूख निवारण के लिये करते हुये जाते हैं। जिन्होंने दान दिया है वे चलना, ग्रहण कर सुख से यमलोक को ले जाया करते हैं।

इस प्रकार से वहाँ मार्ग में ही कर्मों का न्याय प्राप्त करते हुये जीवात्मा कष्ट के साथ प्रेतपुरी में पहुँचते हैं और यमदूत उन्हें बताकर यमराज के समक्ष में खड़ा करते हैं। इन प्राणियों में जो शुभ कर्म करने वाले होते हैं उनका धर्मराज भी स्वागत करते अर्घ्य पाद्य और आसन देकर सम्मान किया करते हैं। उन धार्मिक प्राणियों से यमराज कहा करते हैं - आप सब शास्त्र के अनुकूल शुभ कर्म करने वाले परम महात्मा और धन्य हो। आप लोगों ने दिव्य सुख प्राप्त करने के लिये पुण्य कर्म किये हैं। यमराज धार्मिक प्राणियों से कहते हैं आप लोग दिव्य विमान पर आरूढ़ होकर दिव्यांगनाओं के उपभोग का आनन्दस्वाद करते हुए समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाले निर्मल स्वर्ग में जाओ। वहाँ महाभोगों के अन्त में पुण्य के क्षीण हो जाने पर जो कुछ थोड़ा पाप शेष रहा होगा उसे यहाँ भोगोगे। जो धर्मात्मा मित्रस्वरूप ऐसी आत्मा के पुण्य पुरुष हैं वे धर्मराज के रूप में भी सौम्यमुख पाते हैं। जो क्रूर तथा बुरे पाप करने वाले पुरुष होते हैं उन्हें यमराज का स्वरूप ही अत्यन्त डरावना और विकराल दिखलाई देता है। उनके सामने तो यमराज बड़ी दाढ़ों से युक्त विकराल मुखाकृति वाले और चढ़ी हुई टेढ़ी भृकुटियों से कुटिल दृष्टि वाले दिखलाई दिया करते हैं।

पापियों के समक्ष उनका स्वरूप शिर पर लम्बे केश बड़ी दाढ़ी मूँछ-फड़फड़ाते हुए

भयर अठारह भुजा क्रोध से पूर्ण और अंजन के समान वर्ण काला होता है। पापात्मा जीवों के सामने तो धर्मराज समस्त शस्त्रों से सुसज्जित हाथों वाले सब प्रकार के दण्ड देने, फटकार देने वाले महामहिष पर आरूढ़ और जलती हुई आग के समान रक्त एवं तेजपूर्ण नेत्रों वाले दिखाई देते हैं। पापी प्राणियों के लिये यमराज का स्वरूप रक्तमाला और वज्र तुल्य भयानक घोर गर्जना करने वाले और समुद्र का पान करते हुये से स्थित दिखाई देते हैं। उस समय यमराज ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वे हिमाचल को निगल रहे हैं—अग्नि का वमन कर रहे हैं ऐसे स्वरूप में धर्मराज स्वयं स्थित रहते हैं और उनके समीप में कालानल के तुल्य कांति वाले मृत्यु में स्थित रहते हैं। यमराज के दूत भी इधर-उधर रहते हैं जिनका स्वरूप भी भयावह होता है और इनके अतिरिक्त अंजन के समान कृष्ण वर्ण वाला काल-भयानक राजमारी उग्र महामारी तथा दारुण काल रात्रि भी वहाँ यम के निकट में विद्यमान रहते हैं। वहाँ अनेक रूप वाले रोग, नाना विधि कुल्दादि, शक्ति, त्रिशूल, अंकुश, पाश, चक्र, खड्‌ग हाथों में धारण करने वाले दूत उपस्थित रहते हैं। यमदूतों के पास वज्र, तुण्डधारी रुद्र, छुरे तर्कश और धनुष होते हैं। ये सभी नाना भाँति के अस्त्रों को धारण करने वाले हैं, महान वीर और अत्यन्त भयानक होते हैं।

यमदूतों की संख्या ही नहीं अर्थात् असंख्य होते हैं। वर्ण से बिलकुल काजल के तुल्य काले और और सभी हाथों में अस्त्र-शस्त्र रखने वाले परम भयानक होते हैं। ऐसे परिकर से घिरे हुये धर्मराज के भयानक स्वरूप को अति भयंकर चित्रगुप्त को पापी प्राणी देखा करते हैं। उस समय पापियों के सामने आते ही यमराज बुरी तरह ललकार के साथ डाँटते हैं। चित्रगुप्त अनेक धर्म के वचनों से बोधन किया करते हैं।

महाराज चित्रगुप्त ने पापात्मा प्राणियों से कहा—अरे महान् पाप-कर्म करने वालो! दूसरों के धन का हरण करने वालों! अनेक रूप लावण्य तथा वीर्य पराक्रम से गर्वित होने वालों! दूसरों की स्त्री से रमण करने वालो तुमने जो संसार में ऐसे बुरे कर्म किये हैं अब इनके दण्ड भोग भोगने पड़ेंगे। बताओ तुमने घोर क्लेश के उत्पन्न करने के लिये ऐसे पाप क्यों किये थे? इस समय तुम अपने ही कार्यों से उत्पीड़न होते हुए क्यों रोते चिल्लाते हो। अब कर्मों के फलों को भोगो, इसमें अन्य किसी का कुछ भी दोष नहीं है इस प्रकार से अपने महाघोर बुरे कर्मों से युक्त और बल का घमण्ड रखने वाले राजा लोग भी यमराज के सामने खड़े किये जाते हैं। धर्मात्मा चित्रगुप्त यमराज के आदेश से अत्यन्त क्रोध के

साथ उन राजाओं को शिक्षा देते हैं चित्रगुप्त कहते हैं—अरे दुराचारमग्न ! प्रजा का सर्वनाश करने वाले राजाओ ! तुमने बहुत ही स्वल्प समय तक राज्य भोग करने में ऐसा पाप क्यों किया ? हे नृपवद ! आप लोगों ने राज्य भोगने के कारण अन्याय और बल से प्रजा को दण्ड दिया है। अब प्रजा के सताने का फल भोगोगे।

अब वह तुम्हारा राज्य और स्त्री कहाँ हैं जिनके लिये तुमने महान् पाप किये थे ? अब यहाँ पर तो तुम सबको छोड़कर अकेले ही उपस्थित हो ? मैं इस समय तुम्हारा वह समस्त बल नष्ट हुआ देख रहा हूँ जिससे तुमने अपनी प्रजा का विध्वंस कर डाला था। अब तो यमदूतों के द्वारा अपराधी की भाँति बँधे हुये कसे हुये हो। यमराज के ऐसे वचन सुनकर राजा लोग चुपचाप अपने कर्मों को सोचते और पछताते हैं। धर्म का न्याय करने वाले यमराज राजाओं के उन कर्मों के उद्देश्य को लेकर उनके पाप पंक से शुद्धि पाने के लिये अपने दूतों को आदेश देते हैं। यमराज ने कहा हे चण्ड ! हे महाचण्ड ! तुम बलपूर्वक इन राजाओं को पकड़ कर क्रम से क्रम नरक रूपी आग में डाल दो और इनकी शुद्धि करो और नियम का पूर्ण पालन करो। यमराज की आज्ञा पाते ही दूतों ने बलात्कार से राजाओं को पकड़ लिया और उनके पैरों को पकड़ कर जोर से घुमाया और ऊपर उठाकर नीचे फेंक दिया। यमदूत विशाल सन्तप्त शिलाओं की तल पर उन्हें पटक कर महावृक्ष के समान बज्र से बड़े वेग के साथ ताड़न करते हैं।

इस समय उनके कानों से रक्त टपकता है तब प्राणी जर्जर होकर चेतना शून्य हो जाता है। फिर वायु का स्पर्श पाकर पुनः उनके द्वारा जीवित करके पाप से शुद्धि पाने के लिये नरक नगर में डाल दिया जाता है। वह नगर पृथ्वी के नीचे सात करोड़ अट्ठाईस योजन दूर सातवें तल के अन्त में घोर अन्धकार में स्थित है। उन नरकों के नाम क्रम से इस प्रकार है प्रथम कोटि 'घोर' नामक है। उसके नीचे 'सुघोर' फिर क्रम से अतिघोर, महाघोर और पाँचवीं यातना का नाम घोर रूप है। षटी तलातरव सातवीं भयानक आँठवीं काल रात्रि और नवमी यातना का नाम भयोकटा है इसके भी नीचे दशवीं चण्ड फिर महाचण्ड, चण्ड कोलाहल प्रचण्ड चण्ड नामक है। इसी तरह फिर आगे पद्मा, पद्मावती, भीता, भीमा, भीषण नायिका, कराला, विकराला और बीसवीं रजा नामक है।

इसके बाद में त्रिकोणा, पंचकोना, सुदीर्घा, अखिलर्तिया, समाभीमबला, अभ्रोगा और अन्तिम दीप्त माया है। इस तरह घोर नरक कोटि के नामों वाली ये अठाईस पापों की यातनायें होती हैं। उनमें से क्रम ५-५ नायक

यातना समझनी चाहिये। इनमें से सब कोटियों के नाम विख्यात हैं। उनमें से प्रथम रौरव है जहाँ जाकर सभी प्राणी पीड़ित होकर रोया करते हैं महा रौरव की पीड़ा तो ऐसी विकट होती है कि बड़े पुरुष भी रुदन किया करते हैं। इसके बाद शीत और उष्ण पाँच आद्य नायक है जिन्हें सुघोर, सुमहातीक्ष्ण तथा संजीवन कहा गया है। महातम, विलोम, कण्टक, तीव्रवेग, कराल, विकराल, प्रकपन। महावक्र, काल, कालसूत्र प्रगर्जन, सूचीमुख, सुनेति, खादक, सुप्रपीडन, कुम्भीपाक, सुपाक, क्रकच अति दारुण, अंगार राशीभ वन, मेरु असृकप्रहित, तीक्ष्ण तुण्ड, शकुनि महा संवर्त्तक, क्रतु, तप्तजन्तु, पंकलेप, प्रतिमांस, त्रपूभव, उच्छ्वास सुनिरुच्छ्वास, सुदीर्घ कूटशाल्मलि, दुरिष्ट, सुमहावाद, प्रवाह सुप्रतापन और मेघ वृष शाल्म, सिंह, व्याघ्र हाथी के मुखवाले, मगर, कुम्भीन नक्र नाम वाले, सर्प कच्छप, काग नामक, गिद्ध, उल्लू जली का नाम वाले, गीदड़, ऊँट, कंकड़े नाम वाले, मेंढक, प्रतिबक, रक्ताक्ष, पूति मृतिका, कणधूम्र, अग्नि, कृमि, गन्धि वपु, अग्निध्र, अप्रतिष्ठ रुधिराम श्वभोजन, लाला-क्ष, अन्त्र भक्ष, सर्वभक्ष, सुदारुण।

कण्टक, सुविशाल, विकट; कटपूतन, अम्बरीष, कराह, कष्टदायक वैतरणी, नदी, सुतप्त लोहशयन, एक पाद, प्रपूरण, असिता-लवन, घोर आस्थिभंग, सुपूरण, विलातस, असुपन्न, कूटपाश, प्रमर्दन, महाचूर्ण असुचूर्ण, तप्तलोहमय, पर्वत, क्षुरधारा, यमल, पर्वत, मूत्र विष्ठा, अश्रु कूप शीतल: मूसल उत्खल, शिला, शकट, लांगल, तालपत्र असिगहन, महाघटक, मण्डप, समोह, आस्थिभंग, तप्त, चलमय, गुड बहुदुःख, महाक्लेश, शमल, मलास, हलाहल, विरूप, स्वरूप, यमानुग, एकपाद, त्रिपाद तीव्र, अचीचा, तम।

ये उपर्युक्त क्रम से ७०० नरक है और प्रति कोटि में ये पाँच पाँच नायक है। रौरव के ही १०० नरक कहे गये है और ४००० महानरक मण्डल कहा गया है।

आगे कभी किसी लेख में वैराग्य और उसकी पाप गति का वर्णन किया जायेगा।

——o——

वेदामृत

★ ईश्वर--प्रणिधान ★

[श्री स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज]

ओ३म अन्ति सन्तं न पश्यति,
अन्ति सन्तं न जहाति।
देवस्य पश्य काव्यं,
न ममार न जीर्यति ॥

यह वेदमन्त्र है। कोई भी ऐसा नहीं है जो साक्षात् अथवा परम्परा सम्बन्ध से ईश्वर का अनुनय ही न करता हो। सब चाहे लोकव्यवहार के बताने वाले हों, चाहे विज्ञान के, परन्तु सबको साक्षात् या परम्परा सम्बन्ध से ध्येय परमेश्वर की प्राप्ति में ही वेदमन्त्र बतावेंगे। साक्षात् सम्बन्ध होता है, जैसे आपसे किसी ने पुस्तक मांगी। आपने उसको पुस्तक पकड़ा दी, यह तो हुआ साक्षात् सम्बन्ध। पुस्तक मैंने किसी को दी और उसने उसको दी, यह परम्परा सम्बन्ध है। चाहे मुख्य रूप से चाहे गौण रूप से ईश्वर की ही विवक्षा वेद करता है।

अन्ति सन्तं न पश्यति।

अविद्या-ग्रस्त जो मनुष्य है वह परमात्मा के यद्यपि अत्यन्त निकट है फिर भी नहीं देख सकता। एक तो यह बात, दूसरी बात यह है कि अन्ति सन्तं न जहाति' इसका इतना पट्टतम सम्बन्ध है कि उससे अलग हो ही नहीं सकता। इसके बाद में कहा—

देवस्य पश्य काव्यं,
न ममार न जीर्यति।

उस परमात्मा को जानने के लिये उस देव का जो काव्य है उसको देखो। उसका फल क्या होगा। न फिर मृत्यु का सम्बन्ध है न जीर्णता का। कारण यह है कि जरा-मृत्यु-व्याधियां ये सब संसार के मार्ग में हैं। संसार के मार्ग से पृथक् होने पर ये तीनों तीनों चीजें नहीं रहतीं। फिर आत्मा के साथ उनका सम्बन्ध नहीं होता। संसार के मार्ग में कही गई उन वस्तुओं से पृथक् हो जावे तो वह उसकी पूर्ण शक्ति को पहिचान सकता है। इसका कारण यह है कि संसार के अन्दर हर एक चीज जो बनी हुई है उसका अवश्य ही कुछ न कुछ परिणाम है। कोई भी चीज ऐसी नहीं है जिसका कुछ परिणाम न हो। संसार के अन्दर जितनी भी चीजें बनी हुई हैं वे सब परिवर्तनशील हैं। किसी फारसी कवि ने कहा भी है—

"जमाना यक बजाबूदे अगर नमेयाफ फरजन्द जाफर"

अगर जमाना एक रस रहने वाला होता तो आज जो बच्चा है वह कल बाप नहीं होता। जमाना बदलने पर छोटा बच्चा बाप की जगह ले लेता है और बाप रवाना होता है। समय एक रस रहने वाला नहीं; यह परिवर्तनशील संसार एक रस कभी नहीं रह सकता, एक-एक क्षण बीतने पर संसार बीत जाता है। इस परिवर्तन की अवस्था को १ अरब ९७ करोड़ वर्ष के करीब बीत गये हैं। दिन-रात के चक्कर में इतना लम्बा जमाना बीत गया। दिन-रात तो मोटा परिवर्तन है। दिन और रात मिलाकर २४ घण्टे होते हैं। १ घण्टे के ६० मिनिट होते हैं। सेकिण्ड से भी छोटा समय कालवित् पुरुष ने क्षण माना है। इस क्षण का कोई भी विभाग नहीं किया जा सकता। एक क्षण बीता, दूसरा बीता और तीसरा क्षण भी बीत गया। इसी तरह क्षण-क्षण करते इस सृष्टि को १ अरब ९७ करोड़ वर्ष बीत गये।

संस्कृत का एक-एक शब्द बहुत मतलब रखता है। समस्त संसार को क्षणभंगुर कहा गया है। एक-एक क्षण में भी इसका परिवर्तन होता जाता है। इसके नाम से ही इसका अर्थ भी मालूम हो जाता है। जैसे –भूगोल का नक्शा, इस नाम के कहने के साथ ही यह भी कबूल कर दिया गया कि पृथ्वी गोल है। सारी की सारी आयु इसी क्षण से ही बीती जाती है। मनुष्य का एक-एक क्षण परिवर्तनशील है। जो चीजें बनी हुई होती हैं उन सबमें परिवर्तन होता है। जो चीज बनी ही नहीं उसके अन्दर तो परिवर्तन की ताकत लग ही नहीं सकती। जैसे कणाद ऋषि ने कहा है –

नित्येष्वभावाद् अनित्येषु भावात् कारणे कालख्या।

इसकी ताकत जाहिर कहाँ है? नित्य में तो जाकर यह काल आप ही गुम हो जाता है। अनित्य में यह जाहिर होता है। जो पैदा ही नहीं हुई है उस पर काल की गति का असर नहीं होता। एक चीज पैदा हुई, उसको १० वर्ष बीत गये ऐसा कह सकते हैं। इसके अन्दर भूतकाल भी है, वर्तमानकाल भी और भविष्यत्काल भी है। जो चीज पैदा ही नहीं होती, वह कदीमी सिद्ध ही है। नित्य पदार्थों में काल का अभाव रहता है और अनित्य में काल का भाव।

भाइयो! संसार के अन्दर जो कोई चीज बनी है वह काल के प्रभाव से ही बनी है। बिना काल की सहायता से कोई चीज नहीं बन सकती। इससे काल की महत्ता जाहिर है। संसार में जिसने पहचान लिया कि समय एक वस्तु है, उसने समय को व्यर्थ नहीं खोया। जिसने समय के महत्त्व को नहीं समझा परन्तु समय तो बीतता ही चला

गया, वह समय ठहर नहीं सकता। जैसे एक बच्चा १८ वर्ष का हो गया और उसने बी० एस-सी० पास कर लिया और जिसने नहीं पढ़ा वह भी १८ वर्ष की आयु का तो हो ही गया। उसकी लापरवाही से उसमें फल नहीं आया, परन्तु जिसने बी० एस-सी की पढ़ाई की तो उसको फल की प्राप्ति हो गई। समय दोनों का बीता। इसका मतलब यह है कि समय की कीमत को पहचानना चाहिए।

'समय एव करोति बलाबलम्'

समय ही मनुष्य को बलवान् और निर्बल कर देता है। जिसने खेलने-कूदने में ही समय बिता दिया, समय का महत्त्व नहीं समझा तो वह दुर्बल हो जाता है। अगर समय को समझ लगा तो वह बलवान् हो जायेगा। समय तो दोनों का ही बीतता है, किसी का नहीं ठहरता। इसलिए जो अक्लमन्द आदमी हैं वह समय का उपयोग ठीक रीति से करते हैं, क्योंकि—'गया वक्त फिर हाथ आता नहीं, गया ऐश आराम पाता नहीं।' गया वक्त हाथ में नहीं आता, इसलिए ज्ञान को प्राप्त करने में समय को बिताना चाहिए, क्योंकि ज्ञान नित्य वस्तु है। नित्य वस्तु पर काल का प्रभाव नहीं होता। इसलिए कहा है कि—

'देवस्य पश्य काव्यम्'

वह परमेश्वर, जो देव है, उसके काव्य को देख। उस देव का काव्य वेद ही हो सकता है और वह वेद चार प्रकार के हैं—

ऋग् यजुः साम और अथर्व

अब हम तो वेदों को मानते हैं, परन्तु दूसरे नहीं मानते, मुसलमान नहीं मानते, ईसाई नहीं मानते। वह कहेंगे कि हम तो वेद को नहीं मानते। यह ठीक है। वेद नाम ज्ञान का है। कोई भी यह नहीं कहता कि मैं ज्ञान को नहीं मानता। अगर कोई ऐसा कहदे तो उसकी मूर्खता होगी। तो वह ज्ञान चार प्रकार का है—ऋग, यजुः, साम और अथर्व। जैसे गणित के चार भेद हैं—जोड़, बाकी, गुणा और भाग, इनके अन्दर ऐलजब्रा वगैरह सब आ जाते हैं। इसी तरह ज्ञान के के भी चार भेद हैं। जो आदमी उन्नति की तरफ जायेगा वह देखेगा कि हिन्दुस्तान पतितावस्था में है। मैं तो कहूंगा कि हिन्दुस्तान पतितावस्था में नहीं, वह तो और सब देशों को मालामाल बनाने वाला है। जुगराफिये में अगर आप देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि जैसा यह है वैसा और कोई दूसरा देश नहीं है परन्तु आजकल के इतिहास में बिलकुल निकम्मा सिद्ध होता है, क्योंकि हमारे में आलस्य ज्यादा है। जो काम जिस समय करना चाहिये, उस समय नहीं करते, बेमतलब के लड़ाई-झगड़े करते हैं। सब आदमियों को अगर कोई एक विद्वान् आदमी अच्छे रास्ते पर ले जाना चाहे तो वह आदमी अक्लमन्द और ज्ञानवृद्ध होना चाहिए, तभी ले जा सकता है। बौद्धिक ज्ञान भी ईश्वर प्रणिधान का एक रूप है।

बौद्धिक विवेचन—

❀ शिव-महिमा-सूत्र ❀

[श्री सूरजचन्दजी सत्यप्रेमी]

(१) क्रियादक्ष प्रजापति दक्ष ने शिव—(कल्याण) को निमन्त्रित नहीं किया, इसीलिये यज्ञ प्रध्वंस हो गया। हमारी वैज्ञानिक प्रक्रियाएँ कितनी ही दक्षतापूर्ण हों, पर विश्व-कल्याण शिव के प्रतिकूल होंगी या उसका स्वागत न करेंगी तो ध्वंस की ओर ही ले जायेंगी।

(२) दक्ष की कन्या शिव की शक्ति-बुद्धि—सती होने पर भी सच्चिदानन्द की अवतार-लीलाओं पर संशय करने के कारण जलने योग्य समझी गयी और हिमाचल की पार्वती अविचल शान्तश्रद्धा हुई, जो सप्तर्षियों के डिगाने पर भी नहीं डिगी, तब शाश्वत स्वीकृत हुई और रामायण सुनने की अधिकारिणी बनी। इसी प्रकार हमारी दक्ष-बुद्धि भी संशय छोड़कर शान्त, स्थिर, अचल और उज्ज्वल बनेगी—हिमाचल के घर जन्मेगी, तभी रामचरित्र के योग्य बन सकती है—अन्यथा नहीं।

(३) गणपति-वाहन मूषक और शिव-भूषण सर्प वैरी होने पर भी समन्वय-शक्ति से साथ-साथ रहते हैं। शिव-भूषण सर्प और सेनापति-वाहन मयूर का भी वैर नीलकण्ठ के विष और चन्द्रमौलिक के अमृत में भी वैर, भवानी-वाहन सिंह और शिव-वाहन बैल में भी वैर, काम भस्म करके भी स्त्री रखने में परस्पर विरोध, शिव के तीसरे नेत्र में प्रलय की आग और सिर निरन्तर शीतल-धारामयी गङ्गा से ठण्डा भगवान् के चरणामृत से शान्त, यह भी परस्पर विरोध एवं पूत-भूत और दिगम्बर विभूत का भी वैर। ऐसे दक्ष-जामाता राजनीतिज्ञ होने पर भी भोले-भाले। परन्तु इस सहज समन्वय! धन्य! धन्य! धन्य! शिव! इसीलिये तो महाराणा प्रताप के मालिक, संस्कृति, सम्पत्ति, सत्ता- सन्तति आदि सब विभूतियों से सम्पन्न पौलस्त्य के पूज्य, भगवान् राम के ईश्वर, रामेश्वर, भगवान् परशुराम के गुरुदेव भगवान् शिव की सदाकाल जय हो, विजय हो!

(४) ऋद्धि-सिद्धि का स्वामी, गण का पति, गण के पिता भगवान् शंकर के आशीर्वाद के बिना प्रकट हो नहीं हो सकता—उन्हीं के आशीर्वाद से वह खण्ड-खण्ड करने वाले चूहों पर सवारी करके भी राष्ट्र-गण को अखण्ड करता है। राष्ट्र को, गण को खण्ड-खण्ड करने वाले चूहों को वाहन बनाकर संयत करने वाले और अखण्ड करने वाले गण-पति के बाप भगवान् शंकर की सदा जय हो, विजय हो!

श्रीमद्भगवद् गीता का दृष्टिकोण—

श्रद्धा, दिल और दिमाग,

[स्व० स्वामी सहजानन्द सरस्वती]

दिल के भीतर किसी काम के प्रति जो प्रेम और विश्वास होता है उन दोनों को मिला के ही श्रद्धा कही जाती है। श्रद्धा इस बात को सूचित करती है कि दिमाग दिल की मातहती में आगया है—उसके नीचे काम करने लगा है। विद्वत्ता में ठीक इसके उल्टा दिल को ही दिमाग की मातहती करनी होती है। हाँ, आत्म-ज्ञान, आत्म दर्शन, तत्वज्ञान, ब्रह्मज्ञान, स्थित प्रज्ञता, गुणातीतता, और ज्ञान स्वरूप भक्ति (चतुर्थ भक्ति) की दशा में दिल तथा दिमाग दोनों ही हिल-मिल जाते हैं। इसे ही ब्राह्मी स्थिति, समदर्शन, एवं ज्ञान आदि नामों से पुकारा गया है। जब सिर्फ हृदय या दिल का निराधार प्रसार होता है और उसका मददगार दिमाग नहीं होता तो अन्ध परम्परा को स्थान मिल जाता है। क्योंकि हृदय में अन्धापन होता है इसलिए उसे दीपक की आवश्यकता होती है, और यही काम दिमाग या बुद्धि करती है। विपरीत इसके जब दिमाग या बुद्धि का घोड़ा बे लगाम सरपटें दौड़ता है और उस पर दिल का दबाव या हृदय का अंकुश नहीं रहता तो नास्तिकता, अनिश्चितता, सन्देह आदि की काफी गुंजायश रहती है। क्योंकि तर्क और दलील को पहरेदार सिपाही जैसा मानते हैं, इसीलिए वह एक स्थान पर टिका रह सकता नहीं। अप्रतिष्ठित होता है। स्थान बदलता रहता है। तर्कोऽप्रतिष्ठः।

फलतः सदा के लिए उसका किसी एक पदार्थ पर, एक निश्चय पर जम जाना असम्भव होता है। अच्छे से अच्छे तर्क को भी मात करने के लिए उससे भी जबर्दस्त दलील आ खड़ी होती है।

इस प्रकार तर्कों और दलीलों का सिलसिला जारी रहता है, जिसका अन्त कभी होता ही नहीं। फिर किसी बात का अखीरी निश्चय हो तो कैसे ? संसार भर की बुद्धि आजमा के थक जाय खत्म हो जाय तभी तो ऐसा हो। परन्तु बुद्धि का अन्त परिधि अथवा सीमा तो है नहीं। बुद्धियाँ तो अनन्त है और नई-नई बनती भी रहती है, उनका प्रसार होता रहता है। "बहुशाखा ह्यनन्ताश्चबुद्धयः।"

यही कारण है कि दिल और दिमाग दोनों ही को अलग-अलग छोड़ देने की अपेक्षा गीता ने दोनों को एक साथ कर दिया है, मिला दिया है। इससे परस्पर दोनों की कमी को एक दूसरा पूरा कर लेता है। दिल की कमी या उसके चलते होने वाले खतरे को दिमाग और दिमाग की कमी या उसके करते जिस अनर्थ की सम्भावना है, उसे दिल हटा देता है। इस प्रकार पूर्णता आ जाती है। लालटेन या चिराग के नीचे उसके अत्यन्त नजदीक अँधेरा रहता ही है। मगर दो लालटेनें पास-पास रख दी जांय तो दोनों के तले का अँधेरा जाता रहता है। यही बात यहाँ भी हो जाती है। कर्म, अकर्म, कर्त्तव्य अकर्त्तव्य या कर्म के योग और उसके संन्यास जैसे पेचीदा एवं गहन मामलों में जरा भी कमी जरा भी गड़बड़ी बड़ी ही खतरनाक हो सकती है। यही कारण है कि दिल और दिमाग को मिला के गीता ने उस खतरे को खत्म कर दिया है।

जैसे देह, कपड़े-लत्ते और घरबार को कर्म या क्रिया के द्वारा ही निर्मल बनाते हैं, साफ सुथरा करते हैं। झाड़ू, साबुन, पानी वगैरह के जरिये इनकी मैल हटाके इन्हें स्वच्छ, पवित्र और शुद्ध करते हैं; ठीक वैसे ही दिल, दिमाग को भी निर्मल किया जाता है कर्मों के ही जरिये। आत्मज्ञान और तत्त्वज्ञान से घर की गन्दगी तो हटती नहीं। बुहारू झाड़ू और पानी से धोये पोंछे बिना नहीं हट सकती। मन की मैल और गन्दगी भी उसी प्रकार कर्मों के ही द्वारा मिटती है और वह शुद्ध एवं निर्मल होता है। जिस प्रकार पहली सीढ़ी वालों को गीता ने शरीर-यात्रार्थ" कर्म 'शरीर यात्रापि च ते' (३।८) में कहा है? उसी प्रकार इन्हें 'आत्मशुद्धये' या "आत्मशुद्धयर्थ" कर्म 'सङ्ग त्यक्त्वाऽऽत्म-शुद्धये' (५।११) आदि में कहा है।

मन की मैल भी समझ लेने की चीज है। देह या कपड़े-लत्ते जैसा ठोस और स्थूल पदार्थ तो मन या हृदय है नहीं। वह तो सूक्ष्म - अत्यन्त सूक्ष्म - है और अनुमान से ही उसका अस्तित्व माना जाता है। इसलिये उसमें बाहरी या स्थूल मल (मैल) की सम्भावना नहीं है। यह मैल तो उसके पास पहुँच ही नहीं सकती। यही कारण है कि मन की चंचलता, उसका किसी भी पदार्थ में न टिक सकना, राग, द्वेष और भय आदि ही मैल कहे जाते हैं और इन्हीं को दूर करने की - कम करने की जरूरत होती है। क्रिया या कर्म के प्रभाव से ही मन इन दुर्गुणों से छुट्टी पाता है और धीरे-धीरे इनकी कमी होने लगती है। ये सोलहों आना मिटते तो हैं आत्मदर्शन के बाद ही। मगर इनकी प्रचण्डता और इनका वेग जाता रहता है। जैसे जंगली खूँखार और घरेलू पालतू जानवरों के स्वभाव में फर्क होता है वैसी ही

दया मन की हो जाती है और उसकी खूँखारी जाती रहती है। वह पालतूसा बन जाता है, बनने लगता है। दिल या हृदय की जो दुर्बलता होती है और संकटों के आते ही जो पस्ती आ जाया करती है तथा निराशा हो जाती है वही दिल की मैल है। यह भी कर्म के फलस्वरूप कम हो जाती है, मिटने लगती है। काम करते-करते सफलता-विफलता का सामना बारबार होता है जिससे हिम्मत होती है, बढ़ती है। इस पर आगे संन्यास और त्याग प्रकरण प्रकाश में मिलेगा।

उसी के बाद कर्मों की तीसरी सीढ़ी आती है- यह तीसरा दर्जा सुनने किसी को भ्रम नहीं होना चाहिये। पहली दो सीढ़ियों को पार कर लेने के बाद ही इस तीसरी पर पाँव देते हैं, दे सकते हैं। जब दिल और दिमाग पवित्र हो जाते हैं तो इन्सान कुछ ऊपर उठता है और उसकी दृष्टि विस्तृत होने लगती है। जहाँ पहले अपने पराये की बात होने से वह संकुचित रहती है और कदम-कदम पर पदार्थों का बँटवारा-सा प्रतीत होता है कि यह अपना है और यह विभाग, यह बँटवारा मिटने लगता है और अनेकता में एकता नजर आने लगती है। चाहे इसे "वसुधैव कुटुम्बकम्" कहिये, या समदृष्टि कहिये। इसे ही गीता ने अपने ही समान सबों के—प्राणिमात्र के—सुख-दुःखों का अनुभव या "आत्मौपम्य दृष्टि" भी नाम दिया है और "समत्वबुद्धि" भी कहा है।

लेकिन सबका सारांश है संकुचित से विस्तृत की ओर, परिमित से अपरिमिति की तरफ, पिण्ड से ब्रह्माण्ड की ओर और व्यष्टि से समष्टि की तरफ जाना। इसीलिये इसे ऊपर उठना कहते हैं। इससे यह होता है कि व्यक्तित्व, शख्सियत या 'पर्सनलिटी' (Personality) और व्यक्तिवादिता या 'इन्डिविजुअलिटी' (Individuality) का लोप समष्टि या विराट् के भीतर हो जाता है 'इन्डिविजुअलिटी' मिल जाती है 'कलेक्टिविटी' (Collectivity) में समष्टि भाव में और मनुष्य अपने आपको विस्तृत संसार का एक अविच्छिन्न अंश समझने लगता है। क्रमशः

शेष मैटर अगले ४५ पेज का—

(५) नख से नयन तक सब गरम रक्खो, पर सिर कभी गरम न हो। माथे में गङ्गा रक्खो, चन्द्रमा रक्खो। तभी महादेव की महिमा ठीक-ठीक समझ में आवेगी। 'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्।

(६) बम, भोला की जय! अशिव वेष में शिवधाम भगवान् के चरणामृत गङ्गा को इसीलिये नित्य धारणा करते हैं!

—o—

सर्वेन्द्रिय---निग्रह

ब्रह्मचर्य में बहुत बड़ी साधना आवश्यक है। केवल एक ही इन्द्रिय का निग्रह इतना मात्र उसका अर्थ मान लिया जाय, तो खतरा पैदा होगा। उसका अर्थ है, 'सब इन्द्रियों पर काबू पाना।' इसलिए ब्रह्मचर्य में दो बातें होती हैं :

१. ध्येय उत्तम होना चाहिए और वह विकसित होते-होते ब्रह्म की उपासना तक पहुँचे।

२. सब इन्द्रियों और मन पर भी काबू हो।

इसका यह अर्थ नहीं कि इन्द्रियों और मन को दबायें। बल्कि उन्हें उचित दिशा में ले जाना होगा। यदि दबाने के खयाल में काम चला तो मनुष्य का विकास नहीं होगा। वह तो 'निगेटिव' बात है। सभी इन्द्रियों का उचित नियमन हो, तो साधकों को बहुत लाभ होता है।

दूसरी एक बात कहने को बच आती है। वह यह कि जीवन की छोटी-छोटी बातों में भी नियमन आवश्यक है। खाना, पीना, बोलना, बैठना, सोना आदि सभी विषयों में नियमन चाहिए। मनचाही चाल चलकर इन्द्रिय-निग्रह साध पायेंगे, यह आशा व्यर्थ है। घड़े में तनिक-सा छेद हो, तो भी वह पानी रखने योग्य नहीं रह जाता। इसी प्रकार जीवन की भी स्थिति है।

—विनोबा

Sidhayoga Regd No. L. Ag 0008

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्ध योग

संस्थापक संपादक तथा संरक्षक:
योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग का उद्देश्य

कठ उपनिषद् में देह की रथ, मन की लगाम, बुद्धि की सारथि, इन्द्रियों की घोड़ों और विषय की पथ के साथ तुलना की है, आत्मा को इस रथ का रथी बताया है। सारथि बुद्धि यदि मन की लगाम के सहारे इन्द्रियाश्वों को संयत न कर सकी तो वह कभी भी गन्तव्य में नहीं पहुंच सकेगा, दुष्टाश्वों के समान इन्द्रियां रथ को जहाँ चाहें खींच ले जाकर आरोही रथी को मार सकती हैं।

ये दोनों इडा-पिंगला शक्तिप्रवाह दुष्ट अश्वों की रोकथाम के लिए सारथि के हाथ में लगाम के समान हैं। सारथि को इनका दमन करना चाहिए, करना पड़ेगा ही। नीतिपरायण होने की शक्ति हमें प्राप्त करनी ही है, नहीं तो हम अपने कर्मक्षेत्र को किसी प्रकार भी वश में नहीं ला सकते। नीतिविचारें किस प्रकार आचरण में परिणत की जा सकती हैं, योग इसी बात की शिक्षा देता है। नीतिपरायण होना ही योग का उद्देश्य है।

—स्वा० विवेकानन्द

मुद्रक—सेवाराम शर्मा 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, कटरा फर्ना, आगरा-३